चन्दामामा
अक्तूबर १९८६

डायमंड कामिक्स में

'रमन' सीरीज का नया अंक

रमन और चौका छक्का 4.00

अंकुर बाल बुक क्लब

अब अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनकर पाईये एक अनुपम उपहार मुफ्त

1. एक 3-D कामिक्स मुफ्त

2. बैंक लुटेरों की धर पकड़ मुफ्त

अंकुर बाल बुक क्लब –

डायमंड कौमिक्स की बच्चों के लिये नई निराली अनुपम योजना अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनिये और हर माह घर बैठे, डायमंड कौमिक्स डाकव्यय की फ्री सुविधा के साथ प्राप्त करें।

सदस्य बनने के लिए आपको क्या करना होगा :–

1. संलग्न कूपन पर अपना नाम व पता भर कर भेज दें। नाम व पता साफ-साफ लिखें ताकि पढ़ने में आसानी हो।
2. सदस्यता शुल्क तीन रुपये मनीआर्डर या डाक टिकट द्वारा कूपन के साथ भेजें। सदस्यता शुल्क प्राप्त होने पर ही सदस्य बनाया जायेगा।
3. हर माह पांच पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर 2/- रुपये की विशेष छूट व डाक व्यय फ्री की सुविधा दी जायेगी।
4. आपको हर माह Choice कार्ड भेजा जाएगा यदि आपको निर्धारित पुस्तकें पसन्द हैं तो वह कार्ड भरकर हमें न भेजें।
5. इस योजना के अन्तर्गत हर माह की 20 तारीख को आपको वी.पी. भेजी जायेगी।

सदस्यता कूपन

मुझे अंकुर बाल बुक क्लब का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क तीन रुपये मनी आर्डर/डाक टिकट से साथ भेजा जा रहा है। (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ....

पिता का नाम ....

पता ....

डाकखाना ....

जिला ....

अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनकर कामिक्स के अंत में छपे कूपन इकट्ठे करें और——

"चाचा चौधरी ऐजुकेशनल प्लेइंग कार्ड मुफ्त प्राप्त करें"

रमन के अन्य कारनामे

- रमन और खलीफा की दाढ़ी
- रमन और दस लाख की लाटरी
- रमन, हम एक हैं
- रमन और मसाला डोसा
- रमन सर्कस में
- रमन का टेलीविजन
- रमन और रहस्यमय खजाना

अन्य नये डायमंड कामिक्स

पिंकू और विक्रम वेताल	4.00
मोटू पतलू और जूते का हंगामा	4.00
पलटू और कराटे उस्ताद	4.00
राजन इकबाल और कानी औरत	4.00
अंकुर और सफेद कबूतर	4.00

भारत का ब्रैडमैन

सुनील गावस्कर

क्रिकेट की दुनिया का बेताज बादशाह जिसने विश्व क्रिकेट खिलाड़ियों के सम्मुख रिकार्डों के नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं।

(अनेक चित्रों व नये रिकार्ड के साथ) 10/-

डॉयमन्ड नॉलिज गाइड

जनरल नालिज की अनुपम पुस्तक ज्ञान विज्ञान का भंडार 10/-

डायमंड कामिक्स प्रा.लि 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002. RAJESH.

PUBLICO/DC/oct/86
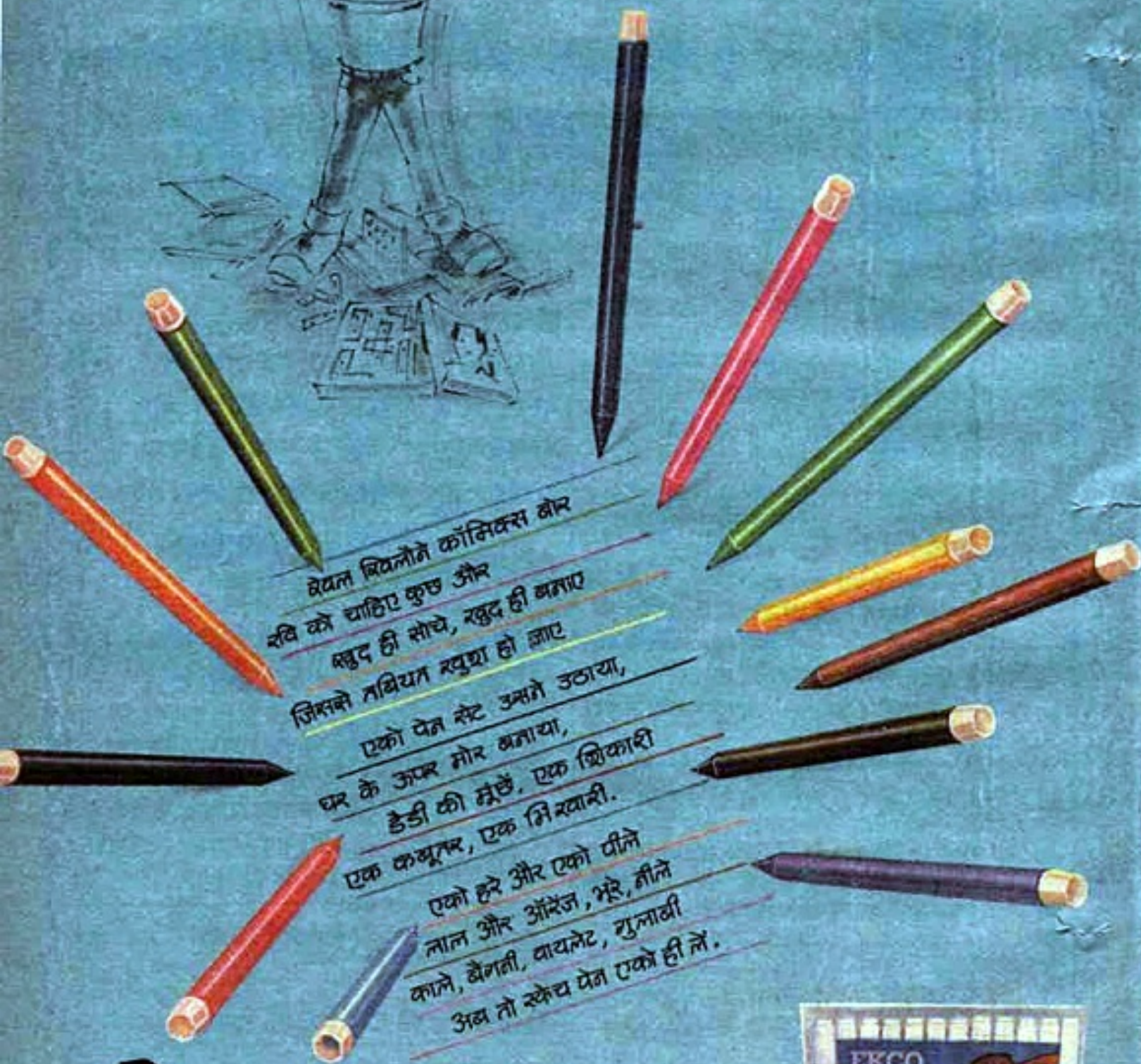
केवल खिलौने कॉमिक्स और
रवि को चाहिए कुछ और
खुद ही सोचे, खुद ही बनाए
जिससे तबियत खुश हो जाए
एको पेन सेट उसने उठाया,
घर के ऊपर मोर बनाया,
डैडी की मूंछें, एक शिकारी
एक कबूतर, एक भिखारी.
एको हरे और एको पीले
लाल और ऑरेंज, भूरे, नीले
काले, बैंगनी, वायलेट, गुलाबी
अब तो स्केच पेन एको ही लें.
EKCO
एको
स्केच पेन
रंगों से यारी, मौज-मस्ती तुम्हारी!
सिज़न राइटिंग पॉइन्ट्स प्रा. लि. १८, सुभाष रोड, विले पारले (पूर्व), बम्बई-४०० ०५७.

सांस की बदबू हटाइए. दांतों की सड़न रोकिए.

कोलगेट का सुरक्षा चक्र अपनाइए!

कोलगेट से नियमित रूप से दांत साफ़ करने से
आपके परिवार में सभी की सांस ताज़ा व साफ़ और दांत मज़बूत व स्वस्थ.
यानि कोलगेट की सुरक्षा.

यह देखिए कोलगेट का भरोसेमंद
फ़ार्मूला किस तरह आपके दांतों की सुरक्षा करता है :

दांतों में छिपे अन्नकणों से सांस में बदबू और दांत में सड़न पैदा करनेवाले कीटाणु बढ़ते हैं.

कोलगेट का अनोखा असरदार झाग दांतों के कोने में छिपे हुए अन्नकणों और कीटाणुओं को निकाल देता है.

कोलगेट से नियमित रूप से दांत साफ़ करने से सांस ताज़ा व साफ़ और दांत मज़बूत व स्वस्थ.

ध्यान रखिए कि आपके परिवार में सभी हर भोजन के बाद कोलगेट से ही दांत साफ़ करें.
सांस की बदबू हटाइए. दांतों की सड़न रोकिए.
कोलगेट का सुरक्षा चक्र अपनाइए.

84-55 Hin

कोलगेट का ताज़ा पेपरमिंट जैसा स्वाद मन में बस जाता है!

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

हर देश और समाज में कवि, कलाकार, नर्तक एवं संगीतज्ञों को आदर प्राप्त होता रहा है। किन्तु, राजाश्रय उनमें से कुछ अत्यन्त समर्थ एवं कुशल कलाविदों को ही प्राप्त होता था। पर यह भी सच है कि इसके लिए उन्हें अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ता था। ऊँचे संस्कार और गहरे ज्ञान वाले एक कवि की वार्ता से एक वयोवृद्धमंत्री की विचारधारा किस तरह बदल जाती है, "परिवर्तन" शीर्षक कहानी में इस तथ्य पर विशद प्रकाश डाला गया है।

अमर वाणी

आमरणांताः प्रणयाः, कोपास्तत् क्षणभंगुराः ।
परित्यागश्च निस्संगा, भवन्ति हि महात्मनाम् ।।

[महात्माओं का प्रेम जीवन पर्यन्त तथा क्रोध क्षणिक होता है। और उनका त्याग निरासक्त और निस्काम होता है।]

वर्ष : ३९ अक्तूबर १९८६ अंक : २

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

लाइफ़बॉय है जहां तन्दुरुस्ती है वहां

कल्याण ऋषि

प्राचीन काल में कुछ ऋषियों ने महान यज्ञ संपन्न किये और स्वर्ग में जाने की अर्हता प्राप्त की। पर उन्हें स्वर्ग में जाने के मार्ग का ज्ञान नहीं था। उनमें कल्याण ऋषि एक थे। अन्य ऋषियों ने उनसे निवेदन किया—"ऋषिवर, हमें स्वर्ग में प्रवेश करने का मार्ग आप ही को दिखाना होगा।" कल्याण ऋषि स्वर्ग के मार्ग का अन्वेषण करने के लिए निकल पड़े। वन में उनकी भेंट उर्णय नाम के एक गन्धर्व से हुई। गन्धर्व ने सहृदयतापूर्वक उन्हें एक मंत्र का उपदेश दिया और कहा—"स्वर्ग की अर्हता रखनेवाले लोग यदि इस मंत्र का जप करते हैं तो उनके लिए स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं।"

कल्याण ऋषि अन्य ऋषियों के पास लौट आये और उन्हें उस मंत्र का उपदेश दिया। ऋषियों ने कल्याण ऋषि से पूछा—"ऋषिवर, यह मंत्र आप को कहाँ से मिला?"

कल्याण ऋषि ने कोई उत्तर नहीं दिया। ऋषियों ने सोचा कि कल्याण ऋषि ने अपनी तपस्या के बल पर इस मंत्र को प्राप्त किया होगा। इसके बाद कल्याण ऋषि मार्ग दिखाते हुए सब ऋषियों के साथ मंत्रोच्चार करते हुए स्वर्ग के निकट पहुँच गये। स्वर्ग के द्वार खुल गये। कल्याण ऋषि के अतिरिक्त सब को स्वर्ग में प्रवेश मिल गया और स्वर्ग के द्वार बन्द हो गये।

उर्णय गन्धर्व ने मंत्र दान कर कल्याण ऋषि का महान उपकार किया था। किन्तु कल्याण ऋषि ने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं की और उसका नाम तक बताने में कृपणता दिखायी। इसीलिए कल्याण ऋषि स्वर्ग की अर्हता रखते हुए भी स्वर्ग में प्रवेश नहीं पा सके।

राजा कौन?

भद्रावती राज्य पर राजा विक्रमसेन का शासन था। उनके दो पुत्र थे–विजय और अनन्त। राजा विक्रमसेन न केवल अतुल बल-संपन्न और पराक्रमी थे, बल्कि धर्मनिष्ठ और कुशल प्रशासक भी थे। उनके राज्य में सर्वत्र सुख-शांति छायी हुई थी और प्रजा सुखी एवं संपन्न थी।

राजा विक्रमसेन चाहते थे कि भद्रावती का भावी शासक भी सब तरह से योग्य हो और उनके तथा पूर्वजों के यश को बनाये रखे। इसी कारण विक्रमसेन ने अपने दो पुत्रों को महान अनुशासन में पाला-पोसा था और योग्य आचार्यों के यहाँ समस्त विद्याओं का प्रशिक्षण दिलवाया था।

बड़ा पुत्र विजय बड़ा बुद्धिमान था। वह स्वभाव से गंभीर और मस्तिष्क से विचक्षण था। उसने कठोर अभ्यास से समस्त शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में कुशलता प्राप्त की थी और समस्त शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया था। वह धीर और विनयी था। कठिन समस्या के उपस्थित होने पर भी वह थोड़ा भी विचलित नहीं होता था और न तो उत्तेजित ही होता था।

अनन्त की प्रकृति विजय से सर्वथा भिन्न थी। वह तेज था और छोटी-छोटी बातों पर भी उद्रेक में आ जाता था।

राजा विक्रमसेन के मन में सदा यह शंका रहती थी कि उनके भिन्न स्वभाववाले इन दोनों पुत्रों में कौन समर्थ शासक बन सकता है? विजय और अनन्त जब पूर्ण युवा हो गये तो राजा विक्रमसेन ने उन्हें एक वर्ष तक सारे राज्य का भ्रमण करने का आदेश दिया।

विजय और अनन्त पैदल ही यात्रा पर निकल पड़े। उन्होंने अपने साथ परिचारकों या किसी भी परिकर को नहीं लिया। वे

राजेन्द्र शर्मा

गाँवों-नगरों को देखते हुए वर्ष के अन्त में राज्य के सीमावर्ती एक वन में पहुँचे।

कड़ी दुपहरी के समय दोनों भाई एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे कि उन्हें एक नारी का कंठ-स्वर सुनाई दिया। वह चिल्ला रही थी—"बचाइये! बचाइये!" विजय और अनन्त तुरन्त उस आवाज़ की दिशा में दौड़ पड़े। चारों तरफ़ झाड-झंखाड़ थे। किसी गहरे स्थान से स्त्री का आर्तनाद सुनाई दे रहा था। दोनों भाइयों को आस-पास किसी कुएँ के होने की शंका हुई।

शंका सच थी। सामने ही झाड़ियों और लम्बी घास से ढंका एक कुआँ था। दोनों भाइयों ने उसके अन्दर झाँककर देखा। विपदा में पड़ी एक स्त्री ने सिर ऊपर उठाकर कहा—"झाड़-झंखाड़ों के कारण मैं इस कुएँ को नहीं देख सकी और कुएँ में गिर गयी। मुझे बचा लो!"

विजय उस नारी के अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठा। उसने सिर घुमाकर अपने छोटे भाई अनन्त की तरफ़ देखा। वह कुछ जंगली लताओं को काटकर लाया और उसने उन्हें जोड़कर एक रस्सी बना ली तथा उसका एक छोर अपने बड़े भाई को थमा दिया। इसके बाद वह कुएँ में उतरा और उस रस्सी के सहारे कुएँ में खड़ी उस स्त्री को ऊपर निकाल लाया।

विजय ने उस स्त्री से पूछा—"तुम कौन हो? यहाँ अकेली कैसे आयी हो?"

"मैं करवीरपुर की राजकुमारी हूँ। मेरा नाम पल्लवी है। मैं अपनी सखियों के साथ वन-विहार को निकली थी। हम आँख-मिचौनी खेल रहे थे। इसी खेल में मैं उनसे अलग हो गयी और न देख पाने के कारण इस कुएँ में गिर गयी। मेरी सखियाँ मेरी खोज करती हुई यहाँ पर ज़रूर आ जायेंगी।" राजकुमारी ने कहा।

पल्लवी की बात अभी पूरी ही हुई थी कि उसकी सखियाँ वहाँ आ पहुँची। इसके बाद विजय और अनन्त ने

अपना परिचय दिया। विजय के मन में राजकुमारी के साथ विवाह करने की इच्छा पैदा हुई। अनन्त के हृदय में भी यही कामना थी। वह सोच रहा था कि वही राजकुमारी को कुएँ से बाहर लाया है। रक्षक होने के कारण उसी के साथ राजकुमारी का विवाह होना चाहिए।

अनन्त ने अपना यह विचार तुरन्त प्रकट कर दिया, लेकिन विजय मौन बना रहा। पल्लवी ने एक बार उसकी ओर आँख उठाकर देखा और अपनी सखियों के साथ चली गयी।

एक वर्ष की अवधि के समाप्त होते ही विजय और अनन्त राजधानी में लौट आये और अपने पिता को देशाटन के अपने अनुभव सुनाये। दोनों ने ही राजकुमारी पल्लवी के प्रति अपने मन की आकांक्षा व्यक्त की। अपने पुत्रों की बात सुनकर विक्रमसेन को बड़ा आश्चर्य हुआ, वे बोले—"पहले हमें यह निर्णय करना होगा कि करवीरपुर की राजकुमारी तुम दोनों में से किसका वरण करना चाहती है, करवीरपुर राज्य बहुत समय से हमारा मित्र राज्य रहा है। मैं वहाँ के राजा एवं राजकुमारी को आमंत्रित कर वास्तविक स्थिति का पता लगाऊँगा।"

एक सप्ताह बाद राजा विक्रमसेन ने अपने मंत्री को करवीरपुर भेजकर वहाँ के

राजा और राजकुमारी को निमंत्रित किया। मंत्री महाराजा कर्णसिंह और राजकुमारी पल्लवी को राजसम्मान से भद्रावती ले आया। मंत्री ने पल्लवी को दोनों राजकुमारों की मनोकामना का परिचय दिया और दोनों राजाओं तथा राजकुमारों की उपस्थिति में राजकुमारी से पूछा—"बेटी, क्या तुम हमारे राजकुमारों में से किसी का वरण करना चाहती हो?"

पल्लवी ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया। तब मंत्री ने उसके हाथ में एक वरमाला दी।

यह देख अनन्त मुस्कुरा कर बोला—"मंत्रिवर, आप को इस बात का संदेह नहीं होना चाहिए था कि राजकुमारी किसको

वरना चाहती है! मैंने उसके प्राणों की रक्षा की है। ऐसी स्थिति में वह मुझे छोड़ और किसे वर सकती है?"

पल्लवी सिर झुकाये खड़ी रही। फिर वह मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई आगे बढ़ी और उसने विजय के गले में वरमाला पहना दी। विजय भी मुस्कराता हुआ मौन खड़ा रहा।

अब पल्लवी ने सिर उठाकर अनन्त की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और बोली–"देवरजी, आप अपने भाई के संकेत पर चलनेवाले हैं। उन्हीं के आदेश पर आप ने मुझे उजड़े हुए उस कुएँ से निकाला। आप के व्यवहार में मुझे लक्ष्मण की-सी भावना दिखाई दी। सीता का लक्ष्मण के प्रति जो भाव रहा होगा, वही भाव मेरे अन्दर है। इसके आवा मैं आप को और किसी रूप में नहीं देखती। आप के भाई क्षत्रियत्व की मूर्ति हैं, उन्होंने मेरे हृदय को हर लिया है।"

अनन्त ने क्षण भर के लिए सिर झुका लिया, फिर माथा ऊँचा कर बोला–"भाभी, आप ने सीता और लक्ष्मण की याद दिलाकर मेरे अन्दर घर किये हुए अहंकार का दमन किया है। मेरे भाई का मुखमण्डल क्षत्रियत्व के सहज तेज से प्रदीप्त है। मेरा क्षत्रियत्व कृत्रिम है, आप ने मुझे इस सत्य का बोध कराया, मैं आप का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।"

इस सारी घटना के बाद महाराजा विक्रमसेन ने भी कुछ निर्णय किया और कहा–"एक राजा के लिए मेधावी, शूर एवं पराक्रमी होना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है क्रोध न करना और व्यर्थ की प्रगल्भता न दिखाना। मेरा बड़ा पुत्र विजय पराक्रमी होने के साथ-साथ धीर और गंभीर है, मैं उसे राजपद देता हूँ।"

राजकुमारी पल्लवी के साथ विजय का विबाह बड़े वैभव के साथ संपन्न हुआ। कुछ दिनों बाद राजा विक्रमसेन ने विजय का राज्याभिषेक किया और राजकुमार अनन्त सदा विनम्र भाव से अपने भाई के आदेशों का पालन करता रहा।"

न्यायाधीश

पुराने समय में विन्ध्याचल के इलाके में खेतीबारी के लिए थोड़ी ही जमीन हुआ करती थी। उस पर कुछ शक्तिशाली लोग अधिकार कर लेते थे और राजा को प्रति वर्ष थोड़ा-बहुत शुल्क देकर वे अपने अधीनस्थ लोगों पर मनमाना हुक्म चलाते थे। उन जागीरदार लोगों की सेवा में कुछ सशस्त्र सैनिक रहा करते थे जो जागीरदारों के आदेशों पर ही चलते थे। सारे निर्णय स्वयं जागीरदार ही लिया करते थे। शिक्षित हों या अशिक्षित, वे जागीरदार ही जनता के गुरु एवं धर्माचार्यों के रूप में व्यवहार करते थे।

इन जागीरदारों में नागचूडामणि नाम का एक जागीरदार भी था। एक बार उसके गाँव में न्यायाधीश का पद संभालनेवाला आदमी मर गया। नागचूडामणि की इच्छा हुई कि क्यों न वही न्यायाधीश बन जाये। उसने तुरन्त निश्चय किया और गाँव में अपने न्यायाधीश होने का ढिंढोरा पिटवा दिया।

यह सच है कि जागीरदार बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता था, लेकिन बड़ी-बड़ी सजाएं, यहाँ तक कि मृत्यु-दंड तक देने में समर्थ न्यायाधीश के पद की नियुक्ति राजा की स्वीकृति से ही होती थी।

नागचूडामणि ने जब अपने न्यायाधीश होने की घोषणा की, तब विन्ध्यप्रदेश का राजा शूरसेन देश-भ्रमण करता हुआ नागचूडामणि के गाँव में आया। जागीरदार उस समय एक अपराध की सुनवाई कर रहा था। दो पड़ोसी गाँवों के दो आदमी उसके सामने खड़े हुए थे। उनमें से एक की नाक आधी कटी हुए थी।

राजा शूरसेन न्यायाधीश की बगल में रखे एक ऊँचे आसन पर बैठे हुए थे।

दुर्गा नागर

नागचूडामणि संकोच के कारण आँखें चुरा रहा था। फिर किसी तरह हिम्मत करके उसने कटी नाकवाले ग्रामीण से पूछा–"तुम्हारी नाक को क्या हुआ?"

सुराज नाम के उस ग्रामीण ने अपनी बगल में खड़े दूसरे आदमी को दिखाकर कहा–"हुज़ूर, इस दाताराम ने मेरी नाक काटी है।"

"दाताराम, तुमने उसकी नाक क्यों काटी?" नागचूडामणि ने पूछा।

"महाशय, मैंने इसकी नाक नहीं काटी, इसने खुद अपने दांतों से काटी है।" दाताराम बोला।

"यह कैसे संभव है? क्या कोई अपने दांतों से अपनी नाक का स्पर्श कर अपनी नाक को काट सकता है?" नागचूडामणि ने पूछा।

"आम तौर पर यह कार्य संभव नहीं है। पर इसने तिपाई पर खड़े हो कर यह कार्य साध लिया है।" दाताराम ने कहा।

नागचूडामणि ने सोचा कि इस मुक़दमे को लम्बा करके राजा का समय नष्ट नहीं करना चाहिए। फिर अपना फ़ैसला सुनाते हुए बोला–"अवश्य ही सुराज ने ऐसा किया है। न्यायालय में खड़े होकर यह झूठ बोल रहा है। इसलिएं इसे मैं सौ कोड़े लगाने की सजा देता हूं।" फिर उसने राजा शूरसेन से कहा–"महाराज, भोजन का समय हो गया है, चलिए!"

राजा शूरसेन और नागचूडामणि ने भोजनालय में भोजन किया। इसके उपरान्त राजा के विश्राम की व्यवस्था कर बाद उसने अपनी पत्नी लक्ष्मी से पूछा–"मेरे फ़ैसले में कोई भूल-चूक तो नहीं हुई?"

लक्ष्मी खीझकर बोली–"तुमने एक बज्रमूर्ख जैसा व्यवहार किया है। लो तुम भी इस तिपाई पर खड़े होकर अपनी नाक काटने की कोशिश करो।"

नागचूडामणि ने प्रमाण के लिए ऐसा करने का प्रयत्न किया, पर असफलता मिली। वह दुखित हृदय से बोला–"अब

मुझे क्या करना चाहिए? राजा ने मेरी बुद्धि के बारे में क्या सोचा होगा?"

"तुम फिर से सुनवाई करो और इस बार उस दूसरे ग्रामीण दाताराम को सौ कोड़े लगाने की सज़ा दो।" लक्ष्मी ने सलाह दी।

इसके बाद राजा की अनुमति लेकर उस शाम नागचूडामणि ने फिर सुनवाई शुरू की। लेकिन तब तक सुराज चालीस कोड़े खा चुका था।

नागचूडामणि ने अपने फ़ैसले में परिवर्तन करके दाताराम को उचित दंड देना चाहा। लक्ष्मी पास ही परदे के पीछे खड़ी हो गयी ताकि ज़रूरत होने पर वह अपने पति को चेतावनी दे सके और मुक़दमे में दुबारा भूल न हो। जैसे ही सुनवाई शुरू हुई, उसने चार उंगलियाँ दिखायीं, जिसका आशय था कि दाताराम को भी चालीस कोड़े लगाने की सज़ा दो।

पर नागचूडामणि ने चार उंगलियों के संकेत को केवल चार ही माना और अपना फ़ैसला सुनाया—"दाताराम को मैं चार कोड़े लगाने की सज़ा देता हूं।"

लक्ष्मी ने सोचा कि उसका पति परम मूर्ख जैसा व्यवहार कर रहा है। उसने क्रोध के कारण दाँत भींचे। यह देख चूडामणि ने अपने सेवक को आदेश दिया—"इसे कोड़े मत लगाओ, इसकी नाक काट लो।"

यह फ़ैसला सुनकर लक्ष्मी पागल-सी हो गयी। उसने सज़ा को रोकने के विचार से अपना हाथ हिलाया। नागचूडामणि ने समझा कि उसकी पत्नी अपराधी की नाक खुद काटना चाहती है। बोला—"अरे ठहरो, मेरी पत्नी इसकी नाक काटेगी।"

नागचूडामणि का निर्णय सुनकर राजा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। इसके बाद उस गाँव से विदा होते समय राजा शूरसेन ने नागचूडामनि से कहा—"तुम न्यायाधीश के पद की अपेक्षा मेरे दरबार में विदूषक का पद संभालने की योग्यता रखते हो। यहाँ के न्यायाधीश पद के लिए मैं एक और व्यक्ति को भेज रहा हूँ।"

ललाट की लिपि

गुरुनाथ नाम का एक किसान था। ज्योतिष पर उसका बिलकुल विश्वास न था, लेकिन उसकी पत्नी सरला ज्योतिष और ज्योतिषियों पर बहुत अधिक विश्वास करती थी।

गुरुनाथ के प्रभा नाम की एक बेटी थी। पूर्ण युवती हो जाने के बाद भी प्रभा का रिश्ता कहीं तय नहीं हो सका था। सरला को अपनी बेटी की चिंता खाये जा रही थी। उनके पड़ोसी गाँव में प्रेममिश्र नाम का एक ज्योतिषी रहता था। सरला ने एक दिन अपने पति से कहा–"चलो, हम प्रेममिश्र ज्योतिषी के पास चलते हैं, पूछेंगे कि हमारी बेटी प्रभा की शादी कब होनेवाली है।"

गुरुनाथ किसी ज्योतिषी के पास नहीं जाना चाहता था। पर अपनी पत्नी के हठ के आगे उसकी एक न चल सकी और उन दोनों ने प्रस्थान किया।

जब वे प्रेममिश्र ज्योतिषी के घर पहुँचे, तब एक युवती ने द्वार खोलकर पूछा– "क्या आप मेरे पिताजी से मिलना चाहते हैं? आइये।"

गुरुनाथ और सरला अन्दर गये। गुरुनाथ ने ज्योतिषी को प्रणाम करके पूछा– "मिश्रजी, आप बुरा न मानियेगा, पर क्या आप बता सकते हैं, आप की बेटी विवाह की वय पार करती जा रही है, आप ने उसका विवाह अभी तक क्यों नहीं किया?"

ज्योतिषी ने हाथ जोड़कर जवाब दिया,–"भाई, यह तो ललाट की लिपि है। भगवान ने जब इसके विवाह की घड़ी निश्चित की होगी, तब इसका विवाह हो जायेगा।"

यह उत्तर सुनकर सरला तुरन्त पीछे मुड़ गयी। गुरुनाथ ने उसका अनुसरण किया।
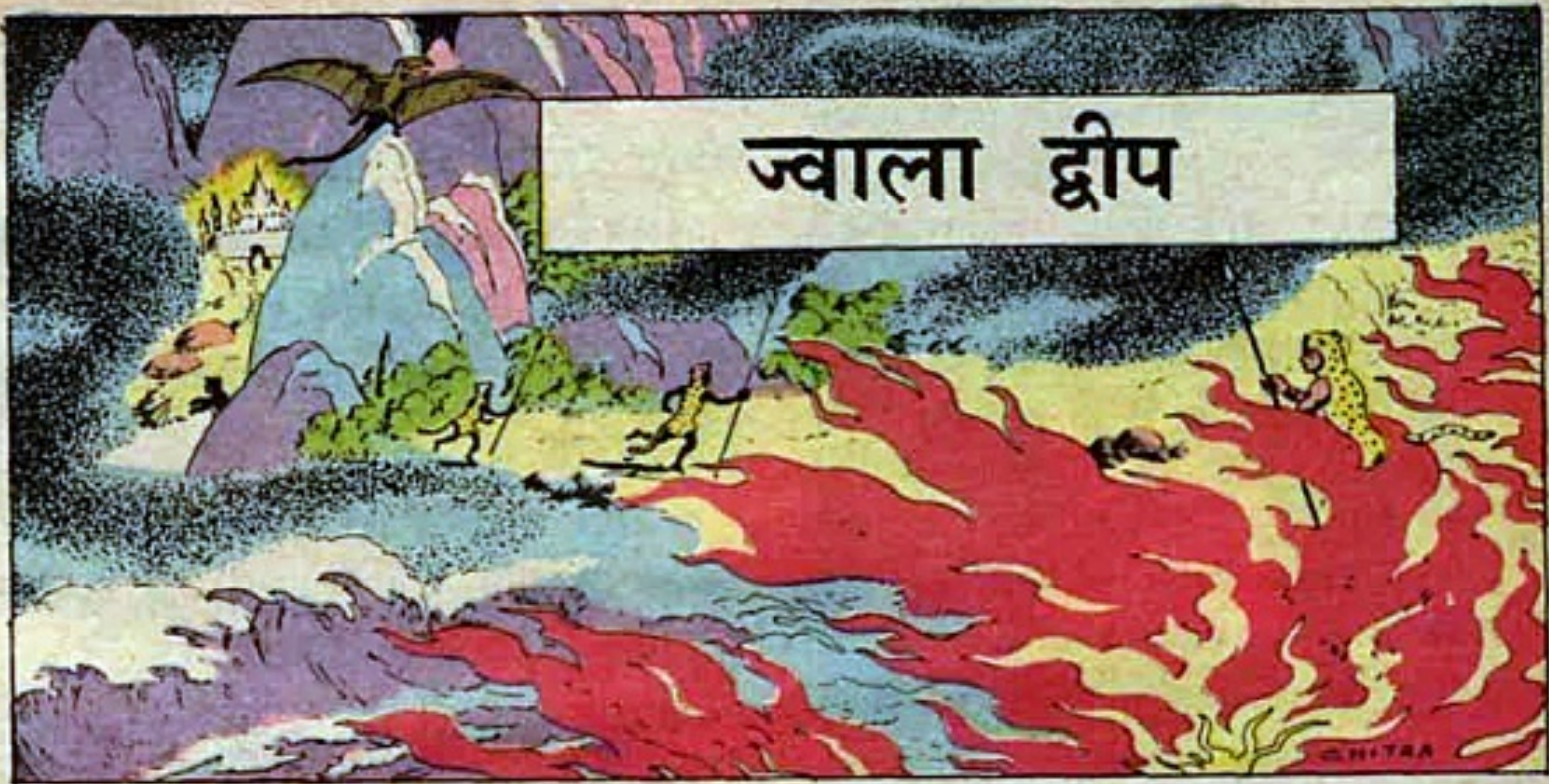
[५]

[चित्रसेन तथा उसके राज-परिकर को उग्राक्ष ने भोज दिया। उसी समय ज्वाला द्वीप से भयंकर पक्षियों पर उड़ कर आये हुए लोगों का समाचार मिला। उग्राक्ष और चित्रसेन जंगल में गये। वहाँ ज्वाला द्वीपवासियों के साथ जो युद्ध हुआ, उसमें उग्राक्ष घायल हो गया। आगे पढ़िये......]

उग्राक्ष अपने सेवकों के कंधों का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ। घावों की पीड़ा के कारण वह ज़ोर से कराह उठा। फिर कुछ चिंतित होकर उसने चित्रसेन से कहा—"चित्रसेन, कोई शत्रु मुझ जैसे भयानक और अजेय को भी अगर इस दशा में पहुँचा सकता है तो मैं क्या कहूँ? इस महारण्य में जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, मैं यहाँ पूर्ण स्वामित्व से विचरण करता रहा हूँ। इसके अलावा मैं यशस्वी राक्षस-वंश की सन्तान हूँ। मुझे, मेरी ही भूमि में कुछ क्षुद्र मानव आहत करके चले गये, यह मेरे लिए बड़े अपमान की बात है।"

चित्रसेन उग्राक्ष को सान्त्वना देकर बोला—"उग्राक्ष, चिंता करने से कोई फ़ायदा तो है नहीं। तुम और मैं—हम दोनों ही हार गये हैं। ज्वालाद्वीप के लोगों से नहीं, हम उनके वाहन उन पक्षियों से हारे हैं।

इस समय हमारे पास जो हथियार हैं, वे उन पक्षियों का सामना करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं, उनका घात करने के लिए हमें कोई दूसरा रास्ता ढूंढना होगा।"

"लेकिन चित्रसेन, जितने हम उस रास्ते का पता लगायेंगे, उतने वे दुष्ट हमारा ख़ात्मा कर देंगे। तुम्हारा यह अनोखा महल, मेरा क़िला और जंगल का यह राज्य–सब कुछ उनके हाथों में चला जायेगा।" उग्राक्ष ने निराश होकर कहा।

चित्रसेन को इस बात पर थोड़ा आश्चर्य भी हुआ कि एक इतना बलवान और भयानक राक्षस, साधारण मानव-प्राणी की भांति भयभीत हो रहा है। उसे उग्राक्ष पर दया आ गयी।

चित्रसेन ने पूछा–"उग्राक्ष, क्या तुम्हारे मन में यह शंका है कि ज्वाला द्वीप के लोग हमारे राज्यों पर अधिकार करने की कोशिश कर रहे हैं?"

"ऐसा न होता तो वे हम पर ये रोज़ हमले क्यों करते?" उग्राक्ष ने उलटा सवाल किया।

"यही बात तो मेरी समझ में नहीं आ रही है, उग्राक्ष? पर मैं ऐसा नहीं मानता कि वे हमारे गाँवों से इक्के-दुक्के आदमी को उठा ले जाने के लिए यहाँ आते हैं!" चित्रसेन ने कहा।

"उन दुष्टों में से अगर एक और व्यक्ति जीवित हमारे हाथ लग जाये तो मैं उसके मुंह से सच्ची बात निकलवा सकता हूँ। एक कम्बख़्त हाथ भी लगा तो मुंह खोलने से पहले ही मर गया।" उग्राक्ष अपने दांत पीसने लगा।

"कभी न कभी उन दुष्टों में से कुछ लोग हमारे हाथ अवश्य ही लग जायेंगे। उस दिन हमें इन लोगों का वास्तविक रहस्य ज्ञात हो जायेगा। पर यह ज्वला द्वीप है कहाँ? ये भयानक पक्षी उनके अधीन कैसे हो गये? उन पक्षीयों को वाहन बनाकर हमारे राज्य में प्रवेश करना मनुष्यों का

अपहरण करना इसके पीछे कैसा रहस्य है? इन सब बातों को हमें सब से पहले मालूम कर लेना है।" यह कहकर चित्रसेन ने उग्राक्ष से विदा ली, पर वहाँ से निकलने के पूर्व फिर कहा–"उग्राक्ष, तुम घावों के भरने तक आराम करो। क़िले की रक्षा के लिए यह ज़रूरी है कि उसे और मज़बूत कर लिया जाये। मैं भी बहुत सतर्क रहूँगा। अच्छा, अब मैं चलता हूँ।" चित्रसेन अपने अनुचरों के साथ आगे बढ़ा।

"चित्रसेन, तुम यह बात किसी से मत कहना कि मैं इतनी दीन अवस्था में हूँ। मैं तुम्हारे परिजनों की दृष्टि में एक साधारण मनुष्य से भी गया-बीता हो गया हूँ।" उग्राक्ष ने पीछे से चिल्ला कर कहा।

उग्राक्ष की बातों पर चित्रसेन को हँसी आ गयी। अभी वह कुछ क़दम ही बढ़ा था कि सेनापति "महाराज!" कहकर सामने आ गया।

"क्या समाचार है, सेनापति?" चित्रसेन ने पूछा।

"महाराज, ज्वाला द्वीपवासियों का सामना करने के लिए हमें उग्राक्ष और उसके वीरों की मदद लेनी होगी। न जाने, कब वे लोग भारी दल के साथ हम पर हमला कर बैठें?" सेनापति ने शंका प्रकट की।

सेनापति की बात सुनकर चित्रसेन को क्रोध तो बहुत आया, पर अपने पर नियंत्रण रखकर वह बोला–"सेनापति, क्या आप चाहते हैं कि हम अपने राज्य की रक्षा के लिए यहाँ से राक्षस-दल को बाँधकर ले जायें? यह कभी नहीं हो सकता। अगर मैं अपने राज्य की और प्रजा की रक्षा स्वयं नहीं कर सकता तो इससे तो बेहतर है कि मैं अपना राजपद ही त्याग दूँ।"

चित्रसेन का उत्तर सुनकर सेनापति सहम गया।

इसके बाद चित्रसेन अपने परिकर के साथ बन में कुछ दूर आगे बढ़ा, तभी उसे पीछे से शोरगुल सुनाई दिया। चित्रसेन

ने चकित होकर पीछे देखा। विचित्र से हथियार धारण किये दो राक्षस जोर से "महाराज, महाराज!" पुकारते हुए दौड़े आ रहे थे।

चित्रसेन रुक गया। सेनापति ने कहा—"महाराज, ज्वाला द्वीपवासी कहीं फिर से हम पर हमला करने तो नहीं आ रहे हैं?"

चित्रसेन ने पूरब की दिशा में दृष्टि डालकर कहा—"अभी सूर्योदय होनेवाला है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ, ज्वाला द्वीप के लोग कभी भी दिन के उजाले में नहीं आते हैं।"

तब तक वे दोनों राक्षस हाँफते हुए आ पहुँचे और चित्रसेन से बोले—"महाराज, हमारे राक्षसराज उग्राक्ष ने हमें आदेश दिया है कि हम आप को अभी उनके पास बुला ले जायें। वे इस वक़्त कुम्भी टीले के पास हैं।"

"एकदम से इतनी ज़रूरत क्या आ पड़ी?" चित्रसेन ने पूछा।

"भयानक पक्षियों पर सवार होकर आनेवाले ज्वाला द्वीपवासियों में से एक आदमी हमारे हाथों में आ गया है। इसलिए राक्षसराज ने आप को बुला लाने का आदेश दिया है।" राक्षसों ने कहा।

"अरे, इतनी छोटी-सी बात के लिए तुम्हें दौड़कर आने की क्या ज़रूरत थी? जो बन्दी बन गया, वह क्या भाग थोड़े ही जायेगा?" यह कहकर चित्रसेन राक्षसों के साथ निकल पड़ा।

"महाराज, वह पेड़ से उतरकर आने से इनकार कर रहा है। आप के आने पर ही बात बन सकती है।" एक राक्षस ने कहा।

चित्रसेन ने सोचा कि ये दोनों राक्षस शराब के नशे में चूर हैं। दुश्मन अगर अकेला हमारे क़ब्जे में आ जाता है तो पेड़ से उतरकर आना या न आना उसके हाथ में नहीं होता।

आधा घंटे में चित्रसेन अपने अनुचरों के साथ कुम्भी टीले के पास पहुँचा।

उसने देखा, इस टीले के समीपवर्ती गाँववाले और कुछ राक्षस एक महावृक्ष के चारों तरफ़ खड़े हुए हैं। उन सब के बीच उग्राक्ष खड़ा है। सब की आँखें पेड़ पर लगी हुई थीं। उस पेड़ की ऊंची डाल पर बाघचर्म पहने एक मनुष्य हवा में तलवार घुमाता हुआ चिल्ला रहा था।

"मैं पेड़ पर से उतरकर नहीं आऊँगा। हर्गिज़ नहीं। तुम सोचते हो कि मैं जानबूझ कर तुम राक्षसों का आहार बन जाऊँगा। अगर किसी ने पेड़ पर चढ़ने की कोशिश की तो मैं उसे तलवार के घाट उतार दूंगा और स्वयं भी मर जाऊँगा।" उस आदमी ने चीखकर कहा।

चित्रसेन ने उग्राक्ष के पास आकर पूछा–उग्राक्ष, यह कैसा शोर-शराबा है?" चित्रसेन की आवाज़ सुनकर उग्राक्ष चौंक पड़ा और बोला–"चित्रसेन, अच्छा हुआ, तुम आ गये। देखो, ज्वाला द्वीप का यह दुष्ट आदमी पेड़ पर बैठा हुआ है। रात जो लड़ाई हुई, उसमें यह बचकर भाग निकला और अब हमारे हाथों में पड़ गया है। ऐसा लगता है कि हम इसे जीवित नहीं पकड़ पायेंगे। इसे डर है कि हम इसे भूनकर खा डालेंगे। तुम इसे प्राणों का अभयदान देकर नीचे उतार लो। इसके द्वारा हमें अनेक रहस्य ज्ञात हो सकते हैं।"

हूँ कि तुम्हारे प्राणों को यहाँ तनिक भी खतरा नहीं है।" चित्रसेन ने आश्वासन दिया।

चित्रसेन के मुँह से यह बात निकलते ही वहाँ खड़ी भीड़ ज़ोर से चिल्ला उठी– "महाराजा चित्रसेन की जय।"

यह जयकार सुनकर पेड़ पर बैठा व्यक्ति विस्मित भाव से चित्रसेन की ओर देखकर बोला–"लेकिन, इन राक्षसों का क्या भरोसा? अगर ये मेरे हाथ-पैर तोड़कर मुझे खा गये तो?"

"इन लोगों से तुम्हें किसी प्रकार का खतरा नहीं है। ये लोग मेरे आदेशों का पालन करते हैं।" यह कहकर चित्रसेन ने उग्राक्ष की तरफ़ देखा। उग्राक्ष ने अपने सेवकों को संकेत किया और वे सब ज़ोर से चिल्ला उठे–"महानायक चित्रसेन की जय!" उग्राक्ष ने भी सिर झुकाकर चित्रसेन को प्रणाम करने का अभिनय किया, फिर मन ही मन बोला–"उफ़, मुझ महाराक्षस की कैसी दुर्दशा हो गयी है!"

"महाराज, आपने मुझे अभयदान दिया, इसलिए मैं पेड़ से उतर कर नीचे आ रहा हूँ।" यह कहकर बाघचर्मधारी वह आदमी सर्राटे से नीचे उतर आया।

"तुम्हें किसी बात का डर नहीं है। तुम अपनी यह तलवार मेरे सेनापति के

चित्रसेन ने पेड़ की सब से ऊँची डाल पर बैठे उस आदमी की तरफ़ दृष्टि उठायी और चिल्लाकर कहा–"अरे भले मानुष, तू नीचे उतर आ। तेरे प्राणों के लिए कोई खतरा नहीं है।"

"नीचे खड़े इन सभी लोगों ने मुझसे उतरने के लिए कहा, मैं नही उतरा। तो क्या तुम इन सारे लोगों से अलग हो? क्या कहीं के राजा-महाराजा हो?" बाघचर्मधारी उस आदमी ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"हाँ, मैं महाराजा चित्रसेन हूँ। ये जंगल, इसमें बसे सारे गाँव और ये सारे प्रदेश मेरे अधीन हैं। मैं तुम्हें अभय देता

हाथ में दे दो!" चित्रसेन ने आदेश दिया। बाघचर्मधारी उस मनुष्य ने चुपचाप वह तलवार सेनापति को सौंप दी।

"चित्रसेन, शायद हमें इस आदमी को यंत्रणाएँ देकर रहस्य जानने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। सामनीति और भेदनीति से ही सारा काम बन जाने की आशा है।" उग्राक्ष ने कहा।

"हाँ, हाँ, मैं जो भी रहस्य जानता हूँ, सब बता दूँगा। ज्वाला द्वीप के वे दुष्ट लोग मुझे "हम सब दोस्त हैं" कहकर यहाँ ले आये। जब विपदा आयी तो वे मुझे यहीं छोड़कर उन बदमाश पक्षियों पर सवार होकर भाग गये। मेरा अन्दाज़ है कि वे अब तक पूर्वी सागर में स्थित ज्वाला द्वीप में पहुँच गये होंगे।" उस आदमी ने कहा।

"क्या तुम ज्वाला द्वीप के निवासी नहीं हो?" चित्रसेन ने चकित होकर पूछा।

"अगर मैं उस द्वीप का निवासी होता तो तुम लोगों के हाथ न आता। मैं ज्वाला द्वीपवासियों के मददगार कपिलपुर के महाराजा नागवर्मा की सेना में काम करता हूँ। मेरा नाम अमरपाल है।" उस आदमी ने कहा।

नागवर्मा का नाम सुनकर उग्राक्ष चौंक पड़ा। उसने पूछा—"नागवर्मा तो सेनापति था। वह कपिलपुर का राजा कब बन गया? राजा वीरसिंह का क्या हाल है?" "महाराजा वीरसिंह तो ज्वाला द्वीप के

पुण्य-कार्य

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतारा और उसे कंधे पर डालकर सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन, आप केवल उदार प्रकृति के ही नहीं हैं, बल्कि पुण्य कार्यों के प्रति आप की गहरी अभिरुचि है। पुण्यकार्य केवल करनेवालों के लिए ही हितकारी नहीं होते, बल्कि समाज को भी उनका लाभ मिलता है। पर कभी-कभी किसी प्रकार का पुण्य किये बिना ही कुछ लोग भगवान की कृपा के पात्र बन जाते हैं। इसके उदाहरण के रूप में एक लालची धनवान और एक डाकू की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये!"

बेताल कहानी सुनाने लगा : पाटलीपुत्र में रामरतन नाम का एक धनवान रहता था। एक बार वह किसी बीमारी का

बेताल कथा

शिकार हो गया। वैद्यों ने अनेक प्रयत्न किये, पर उन्हें सफलता न मिली।

एक दिन सेठ रामरतन के घर एक साधु आया। उसने सेठ को बिस्तर पर पड़े देखकर कहा–"तुमने धन के लालच में आकर कभी कोई पुण्य-कार्य नहीं किया, हमेशा पाप ही करते रहे हो। वे ही पाप इस समय तुम्हें व्याधि के रूप में सता रहे हैं। पुण्य के अलावा और कोई भी औषधि तुम्हारी व्याधि को दूर नहीं कर सकती। इसलिए तुम आज से पुण्य-कार्य करना आरंभ कर दो।"

"महाराज, आप मुझे साफ़-साफ़ बताइये कि पुण्य-कार्य कौन से होते हैं और उन्हें करने की विधि क्या है?" रामरतन ने पूछा।

"तुम श्रद्धापूर्वक, उदारता के साथ जो कार्य करोगे, वह पुण्यकार्य कहलायेगा।" साधु ने समझाया और विदा ली।

जिस समय साधु ने यह बात कही, वहाँ रामरतन के परिवार के सभी सदस्य मौजूद थे–पत्नी प्रेमा, दो पुत्र, दो पुत्रियाँ।

रामरतन की पत्नी प्रेमा ने सुझाव दिया–"हम लोग अन्नदान करेंगे।"

"अन्नदान का मतलब है कि आनेवाले अतिथियों को सन्तुष्टिपूर्वक भरपेट भोजन कराना। पर हम स्वयं ही सन्तुष्टिपूर्वक श्रेष्ठ भोजन नहीं कर पा रहे हैं, तब हम दूसरों को सन्तुष्टिपूर्वक भोजन क्या करा पायेंगे? इसलिए किसी और पुण्यकार्य के बारे में सोचो!" रामरतन ने कहा।

इसके बाद सब अलग-अलग सुझाव देने लगे। किसी ने वस्त्रदान करने को कहा तो किसी ने विद्यादान करने का सुझाव दिया। एक ने गरीब कन्याओं के विवाह में मदद की बात कही तो दूसरे ने अनाथालयों में धन देने की बात कही।

अन्त में प्रेमा ने खूब सोच-समझ कर यह प्रस्ताव रखा, "मेरे विचार से तीर्थाटन करना सब से बढ़कर पुण्य का कार्य होगा। सब देवी-देवताओं के दर्शन मिलेंगे और

पवित्र नदियों में स्नान कर हम महान पुण्य के भागी बनेंगे।"

पत्नी का प्रस्ताव सुनकर रामरतन बोला–"भगवान का दर्शन करने के लिए तीर्थाटन की आवश्यकता नहीं है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि भगवान के रूप भले ही अनेक हैं पर मूलतया वह एक है। इसलिए तुम लोग प्रतिदिन पास के ही राम-मन्दिर में जाना आरंभ करो और मेरे लिए भगवान राम से प्रार्थना करो कि वे मुझे स्वस्थ कर दें। यह पुण्य हमारे लिए पर्याप्त है।"

सब को मालूम ही था कि रामरतन धन खर्च करने के लिए तैयार नहीं है, इसलिए सब ने उनका सुझाव स्वीकार कर लिया और वे प्रतिदिन राम-मन्दिर में जाने लगे। फिर भी उनकी बीमारी ज्यों की त्यों बनी रही।

"साधु के कथन में कोई सच्चाई नहीं है। व्यापार की झंझटों में फँसकर मैंने कभी भगवान का स्मरण नहीं किया, बस यही मेरा सब से बड़ा पाप है। मेरी बीमारी का कारण मेरा पाप नहीं, बल्कि मेरा दुर्भाग्य है।" इस प्रकार रामरतन अपने परिवार वालों को समझाया करता।

एक डाकू की नज़र बहुत दिनों से रामरतन की संपत्ति पर थी। जब तक रामरतन स्वस्थ था, तब तक उस डाकू को रामरतन के घर में घुसने का मौक़ा नहीं मिला। रामरतन बड़ी कड़ी निगरानी रखता था। अब वह डाकू, जिसका नाम जग्गासिंह था, कोई उपाय पाकर उस घर को लूटने का मौक़ा ढूंढने लगा। आखिर सोच-विचार कर उस ने एक योजना बनायी।

अपनी योजना के अनुसार जग्गासिंह दो रात रामरतन के घर में घुसा, लेकिन उसने उस घर की कोई चीज़ नहीं चुरायी। उसने सिर्फ़ इतना ही किया कि अपने आने के निशान छोड़ दिये, ताकि सब को मालूम हो जाये कि घर में कोई चोर आया था।

"सेठ जी, लक्ष्मी चंचल प्रकृति की है। एक जमाने से वह आप के पास रहती आयी है। अब वह स्थान-परिवर्तन चाहती है। उसने आप के घर से निकल जाने का प्रयत्न दो बार किया है, पर किसी कारण से रुक गयी है। पिछले दो दिनों में आप के घर में चोरी के प्रयत्न हुए हैं न?" साधु बने डाकू ने पूछा।

रामरतन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस नक़ली साधु से पूछा—"स्वामी जी, लक्ष्मी को हमारे घर में रोका जा सके, क्या इसका कोई उपाय नहीं है?"

"क्यों नहीं, पहले आप मुझे सन्तुष्टिपूर्वक भोजन कराइये, फिर मैं लक्ष्मी की उपासना करूँगा। पूजा के बाद मैं आप सब को तीर्थ दूँगा, उसे आप लोग ग्रहण कीजियेगा। तब इस घर की लक्ष्मी शाश्वत काल तक इसी घर में निवास करेगी।" नक़ली साधु ने कहा। रामरतन ने साधु की शर्तों को स्वीकार कर लिया।

उस रात प्रेमा ने अनेक व्यंजन बनाये और साधु को बड़े प्रेम से भोजन कराया। इसके बाद उसने कुछ देर तक लक्ष्मी-पूजा का आडम्बर किया और सारे परिवारवालों को तीर्थ-जल दिया। उसमें डाकू ने कोई नशीली दवा मिला दी थी, इसलिए वे लोग कुछ ही क्षणों में बेहोश हो गये।

रामरतन की पत्नी प्रेमा ने समझ लिया कि रात के समय उनके घर में कोई चोर आता है। उसने यह बात अपने बच्चों को बताकर उन्हें सावधान किया—"देखो, यह बात तुम अपने पिता को मत बताना। इस समय वे बीमार हैं, उन्हें ऐसी कोई खबर देना उचित नहीं है।"

डाकू जग्गासिंह तीसरे दिन एक साधु का वेश बनाकर रामरतन के घर पहुँचा और बोला—"सेठजी, इस समय आप और आप का परिवार बड़े खतरे में फँसे हुए हैं, इसीलिए मैं आप को चेतावनी देने आया हूँ।"

"स्वामी जी, क्या बात है?" रामरतन ने घबराकर पूछा।

जग्गासिंह ने रामरतन सेठ के तकिये के नीचे से तिजोरी की चाबियाँ निकालीं और तिजोरी खोली। उसमें बहुमूल्य आभूषण, सोने के सिक्के और ढेरों चाँदी थी। इतनी सम्पदा एक साथ देखकर डाकू की आँखें चुंधिया गयीं। उसने वह धन लूट लेने से पहले उस घर के सभी लोगों के चेहरों पर अपनी नजर दौड़ायी कि कहीं कोई होश में तो नहीं आ गया है।

उस समय रामरतन की पत्नी प्रेमा का मुँह देखकर वह सहम गया। उसे यह बात याद आ गयी कि इस घर की गृहिणी ने उसे एक माता के समान वात्सल्य-भाव रखकर भोजन कराया था।

डाकू जग्गासिंह का कड़ा दिल पिघल गया। वह सोचने लगा–"जिस माई ने उसे इतना प्यार और स्नेह से भोजन कराया, उसके घर में वह डाका डालने का जघन्य कार्य नहीं कर सकता।"

जग्गासिंह ने अपना निर्णय बदल दिया और तिजोरी बन्द करके चाबियाँ रामरतन के तकिये के नीचे रख दीं। इसके बाद उसने वहाँ से भागने की तैयारी की, पर वह यह विचार कर कुछ देर और रुक गया कि परिवार के सब लोग बेहोश हैं। हो सकता है कोई और चोर घर में घुस जाये और सारा धन लूटकर भाग जाये।

इसलिए जग्गासिंह उस घर का पहरा देता रहा। सुबह होने से पहले ही प्रेमा जाग उठी। उसने साधु को नमस्कार करना चाहा, पर साधु ने उसे रोककर अपना सारा सच्चा वृत्तान्त सुनाकर कहा–"माई, अब मेरे अन्दर परिवर्तन आ गया है। अब मैं चोरी करना बन्द कर या तो कोई धंधा करूँगा या नौकरी करूँगा।"

प्रेमा ने डाकू से कहा–"तुम यह सारा किस्सा मेरे पति को मत बताना। वे किसी भी हालत में तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे। तुमने हमारे घर में लक्ष्मी-पूजा की है। मैं तो ऐसा समझती हूँ कि लक्ष्मी ने ही तुम्हारे माध्यम से हमारी रक्षा की है।"

कुछ देर बाद रामरतन की आँखें खुलीं। वह अपने पलंग से उतरा और अपनी पत्नी से बोला—"प्रेमा, मैं पहले की तरह उठकर चल पाता हूँ। लगता है, लक्ष्मी-पूजा ने मेरी बीमारी को भगा दिया है।"

सेठ रामरतन की बातें सुनकर कपट साधु बना जग्गासिंह डाकू बोला—"सेठजी, माई ने सच्ची बात छिपाने को कहा, फिर भी मैं उसे छिपा नहीं सकता।" इसके बाद उसने अपना सारा वृत्तान्त सुनाया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा—"राजन, सेठ रामरतन जब बीमारी का शिकार था, तब एक साधु ने आकर उसे यह सुझाव दिया कि वह श्रद्धापूर्वक कोई उत्तम कार्य करके पुण्य का भागी बने। पुण्य के सिवा कोई औषध उसकी बीमारी को दूर नहीं कर सकती। रामरतन ने उसका कहना नहीं माना। पर जब लक्ष्मी को घर में शाश्वत रूप से टिकाने की बात आयी तो उसने जग्गासिंह को भरपेट भोजन खिलाया। रामरतन ने यह कार्य अत्यन्त लोभ के कारण किया। इसे पुण्य-कार्य नहीं माना जा सकता! फिर भी उसकी बीमारी ठीक हो गयी। इसका कारण क्या है? अगर आप इस सन्देह का समाधान जानकर भी न करेंगे तो आप का सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

राजा विक्रमार्क ने जवाब दिया—"अमृत का सेवन चाहे जानबूझकर किया जाये या अनजाने में, उसके सेवन से अमरत्व की सिद्धि अवश्य होती है। अगर कोई किसी शुभकार्य को स्वार्थवश भी करता है, तो भी उसे पुण्य की प्राप्ति अवश्य होती है। सेठ रामरतन ने साधु बने डाकू को खुशी से मिष्ठान्न भोजन कराया। उसके कारण जो पुण्य उसे प्राप्त हुआ, उससे उसकी बीमारी दूर हो गयी। साथ ही डाकू भी उत्तम पथ का पथिक बन गया। इसलिए यह कहना उचित नहीं होगा कि रामरतन ने कोई पुण्य-कार्य नहीं किया।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)
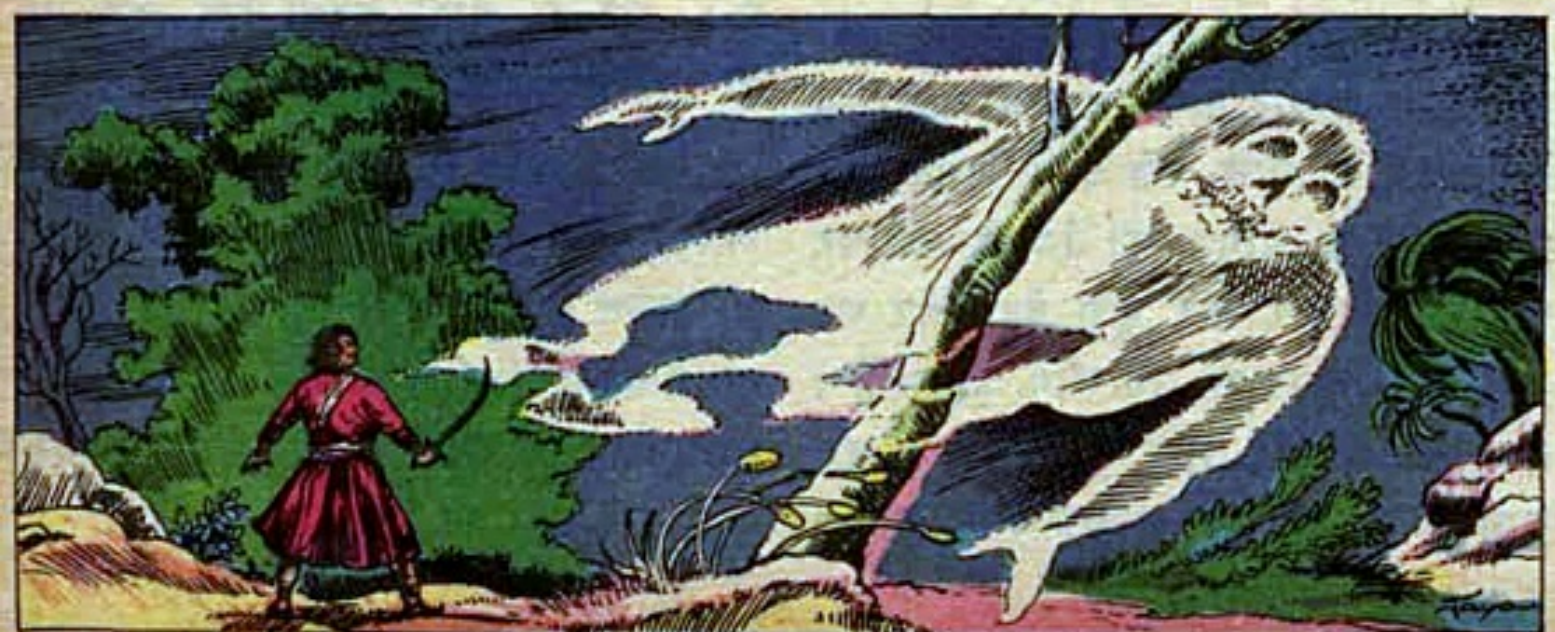
सच्चा तीर्थाटन

देवपुरी में मानिकलाल नाम का एक बड़ा जौहरी रहता था। उसकी पत्नी का नाम श्यामला था। एक बार इस दम्पति के मन में तीर्थाटन करने की इच्छा पैदा हुई। उन्होंने अपना यह विचार देवपुरी के एक विशेष पंडित रामशर्मा को बताया और उनसे कहा—"पंडित जी, आप हमारी यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त निकाल दीजिये!"

पंडित रामशर्मा ने एक शुभ मुहूर्त का निर्णय करके उनसे कहा—"आप का तीर्थाटन का विचार अत्यन्त प्रशंसनीय है। अगली द्वादशी को शुभ मुहूर्त का विधान है। आप अपनी यात्रा आरंभ कीजिये। पर एक बात ध्यान रखियेगा, यात्रा के समय अपने बच्चों की, घर-बार एवं व्यापार की चिंता किये बिना आप भगवान का ही स्मरण करते रहना। तभी आप को सच्चे तीर्थाटन का फल प्राप्त होगा।"

द्वादशी के शुभ मुहूर्त में पति-पत्नी घर से चल पड़े। पुण्य तीर्थों का भ्रमण करते हुए वे एक दिन दुपहर के समय एक नदी के तट पर पहुँचे। नदी के किनारे एक बगीचा था। श्यामला एक पेड़ के नीचे बैठ गयी। मानिकलाल नदी में स्नान करने चला गया।

नदी के उस पार एक पर्वत-माला थी। मानिकलाल ने सुन रखा था कि पर्वत-शिखर पर शिलाओं के बीच जब-तब छोटे-छोटे रत्न मिल जाते हैं। स्नान करते समय उसका ध्यान बराबर उन रत्नों में लगा रहा। स्नान करने के बाद वह अपनी पत्नी श्यामला के पास आया। श्यामला वृक्ष के तने से सटी हुई सो रही थी। तभी मानिकलाल ने देखा कि श्यामला के दायें हाथ के क़रीब धक्-धक चमकती कोई चीज पड़ी हुई है। मानिकलाल जौहरी

त्रिलोकीदत्त शर्मा

था। उसने विस्मित होकर उस चीज़ को उठा लिया। हाथ में लेते ही वह समझ गया कि यह एक बहुमूल्य रत्न है।

मानिकलाल कुछ क्षणों तक सोचता रहा कि उस रत्न का क्या करना चाहिए? उसे पंडित रामशर्मा की वह बात याद आ गयी जो उन्होंने सच्चे तीर्थाटन के प्रसंग में बतायी थी। धन के प्रति मोह नहीं होना चाहिए, मानिकलाल ने इस रत्न को गाड़ दिया।

तीसरे पहर के क़रीब जब धूप थोड़ी कम हो गयी, तब पति-पत्नी दोनों वहाँ से निकल पड़े। मानिकलाल ने कुछ दूर जाने पर अपनी पत्नी से पूछा—"सुनो श्यामला, जब मैं नदी में स्नान करने के बाद लौटा था, तब तुम्हारी बगल में एक चमकती हुई चीज़ पड़ी हुई थी। वह क्या थी?"

"तुम एक रत्न के बारे में पूछ रहे हो न?" श्यामला ने पूछा।

अपनी पत्नी के मुख से यह सवाल सुनकर मानिकलाल को बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्यामला इतमीनान से बोली—"मैं पेड़ के नीचे बैठी ऊँघ रही थी, तब एक गीध आकर पेड़ की डाल पर बैठ गया। मैंने देखा उसकी चोंच में कोई चीज़ चमक रही है। थोड़ी देर बाद वह चीज़ गीध की चोंच से फिसलकर मेरी बग़ल में गिर गयी। मुझे यह समझते देर न लगी कि वह एक छोटा-सा रत्न है। इस बीच मुझे गहरी नींद आ गयी और मैं सो गयी।"

"क्या तुम्हारे मन में उस रत्न को उठाने की इच्छा नहीं हुई?" मानिकलाल ने पूछा।

"मेरे मन में ऐसी इच्छा पैदा क्यों होती? हम तो पुण्य कमाने के लिए घर से निकले हैं न? मणि-मुक्ता, रत्न कमाने के लिए तो नहीं न? यदि तीर्थाटन के समय भी ये मणि-रत्न मिट्टी के ढेलों के समान न लगें तो हम पुण्य कमाने के योग्य नहीं होंगे।" श्यामला ने उत्तर दिया।

श्यामला का उत्तर सुनने के बाद मानिकलाल के हृदय में अपनी पत्नी के प्रति आदर बहुत अधिक बढ़ गया।

हमारे मन्दिर

कांचीपुरम

ब्रह्मा ने एक बार यज्ञ करने का संकल्प किया और एक योग्य स्थान की खोज में चल पड़े। वे सत्यव्रत क्षेत्र नाम से विख्यात कांचीपुरम में पहुँचे और उन्होंने इसी स्थान पर अपना यज्ञ प्रारंभ कर दिया।

सरस्वती देवी को ब्रह्मा का यह कार्य अच्छा न लगा और वे वेगवती नदी का रूप धरकर यज्ञ-वाटिका को जलमग्न करने के लिए तीव्र गति से उमड़ कर बहने लगी। उस समय महाविष्णु ने नदी की धारा के मार्ग में लेटकर उसे आगे बढ़ने से रोक दिया।
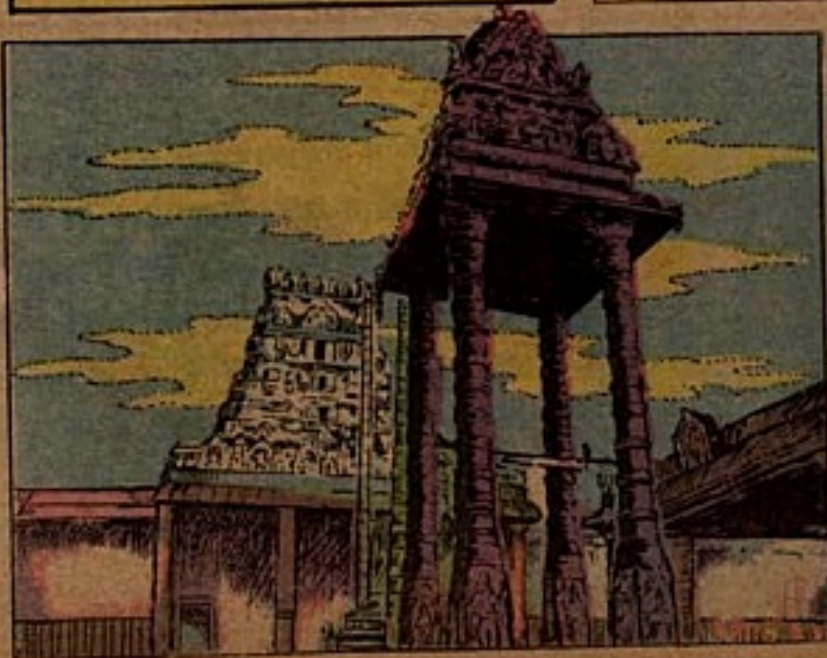
इसके पश्चात ब्रह्मा की प्रार्थना मानकर भगवान महाविष्णु वहाँ प्रतिष्ठित हुए और भक्तों की कामना की पूर्ती करने लगे। भक्तों को वरदान देने के कारण वे वरवराज स्वामी कहलाये। कांची में वरदराज स्वामी का यह मन्दिर अनेक प्राचीन मन्दिरों की नींव के ऊपर बना हुआ है।
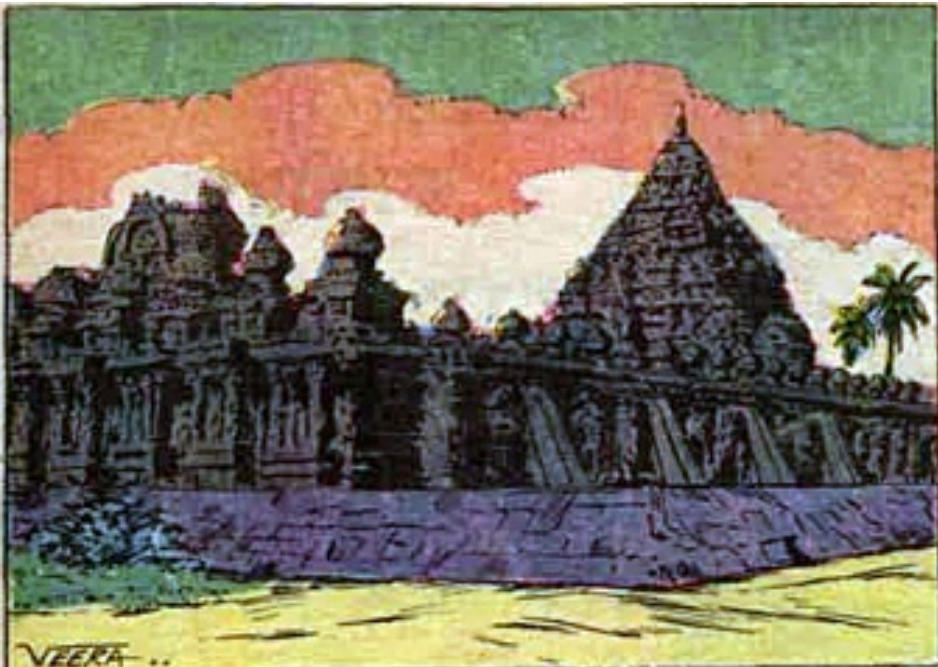
पल्लववंशी राजा राजसिंह ने इसी क्षेत्र में श्री कैलाशनाथ मन्दिर का निर्माण कराया जो अद्भुत शिल्पकला के लिए विख्यात है। गर्भगृह में निर्मित शिवलिंग सोलह फलकों से तैयार किया गया है। उस मन्दिर की चहारदीवारी के चारों तरफ़ छोटे-छोटे अट्ठावन मन्दिर बने हुए हैं।

एक और पल्लववंशी राजा नन्दिवर्मा ने अनुपम शिल्पकला के लिए विख्यात श्री वैकुण्ठ पेरुमाल के मन्दिर का निर्माण कराया था। तीन तल्लों से शोभित मन्दिर के विमान में महाविष्णु तीन भंगिमाओं में उत्खदित हैं– खड़े, बैठे एवं लेटे हुए।
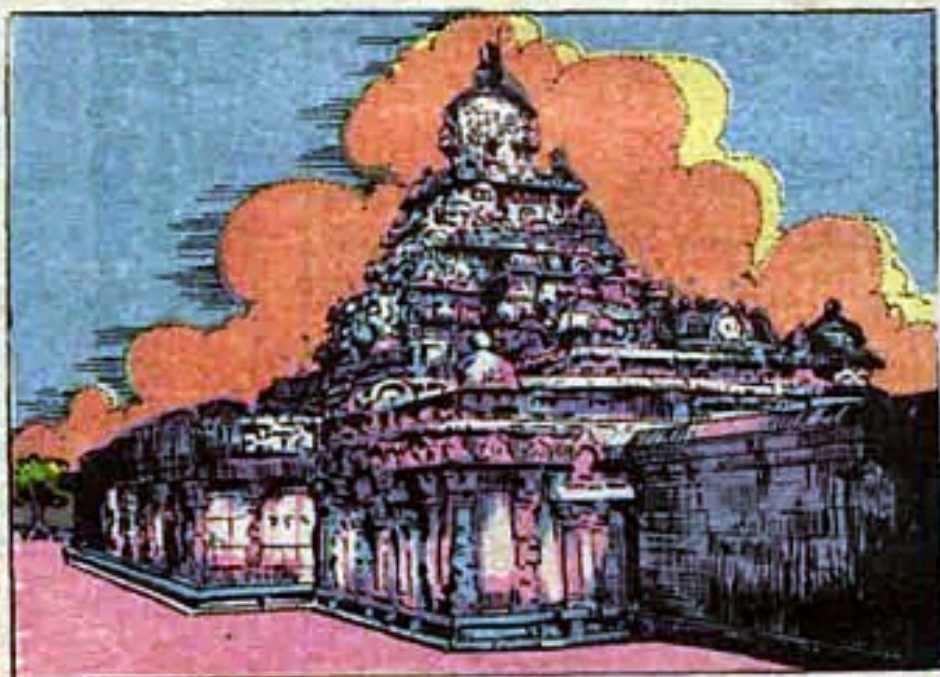
कांचीपुर में एकाम्बरनाथ का मन्दिर सब से प्राचीन माना जाता है। किसी काल में यहां एक सहस्त्र स्तम्भों का मण्डप था। इस समय इस मण्डप में छह सौ सोलह स्तम्भ हैं। अत्यन्त विशाल इस मन्दिर के प्रांगण में अनेक मन्दिर, मण्डप, गोपुर और तड़ाग हैं।
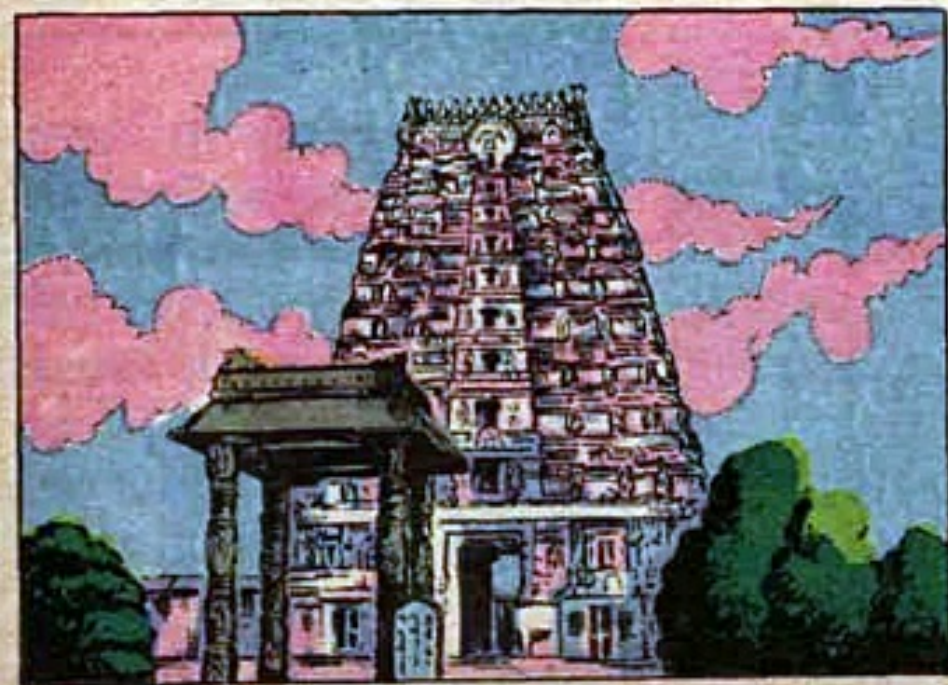
एक प्रसंग है, जब शिव-पार्वती का विवाह हुआ तो उसके दर्शन के लिए देवगण और ऋषि कैलास गये। उस समय भगवान शिव ने भारत भूमि को आध्यात्मिक दृष्टि से समान रखने के विचार से अगस्त्य मुनि को दक्षिण भारत में जाने का अदेश दिया।

अगस्त्य ने शिव का आदेश स्वीकार कर लिया। साथ ही यह आग्रह किया कि उन्हें शिव-पार्वती के विवाह के अवलोकन का अनुग्रह प्राप्त हो। उनके आग्रह को पूर्ण करने के लिए पार्वती देवी कांचीपुरम में नदी के तट पर कन्या रूप में आकर परमशिव के लिगरूप की आराधना करने लगीं।

पार्वती को भयभीत करने के विचार से शिवजी लिंग को बहा देने के लिए नदी में बाढ़ ले आये। पार्वती ने शिवलिंग को हृदय से लगा लिया और स्वयं भी नदी की बाढ़ में बहने के लिए तैयार हो गयीं। तब शिव ने प्रत्यक्ष होकर पार्वती के साथ विवाह क्रिया। अगस्त्य मुनि को शिव-पार्वती के विवाह को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एकाम्बरनाथ के मन्दिर के प्रांगण में एक आम्रवृक्ष है जो एक हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराना कहा जाता है। ऐसा विश्वास है कि इस अम्ब वृक्ष के कारण ही इस मन्दिर का नाम एकाम्बरनाथ पड़ गया। चार वेदों के चिन्हों के रूप में सुशोभित इस वृक्ष की चार शाखाओं में चार प्रकार के स्वादवाले आम लगते हैं। यह इस वृक्ष की विशेषता है।

कांचीपुरम हमारे देश के सात पुण्य क्षेत्रों में एक माना जाता है। आदिशंकर ने यहाँ पर कामकोटी-पीठ की स्थापना की है। हज़रत हमीद आवालिया नाम के एक मुस्लिम धर्मगुरु ने भी कांचीपुरम को पवित्र स्थान मानकर अपना आवास बनाया था।
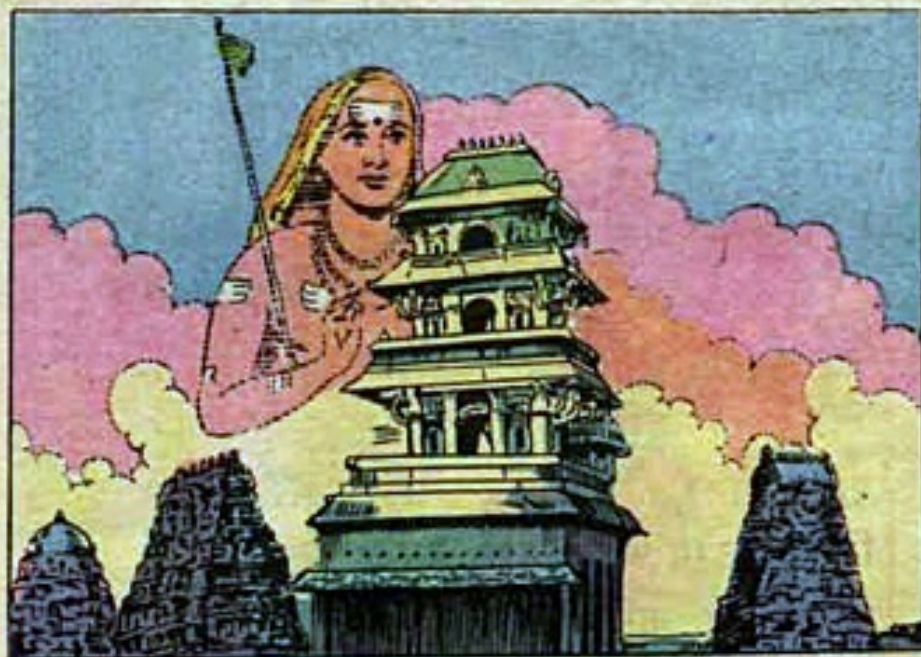
किसी समय कांचीपुरम बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र भी रहा है। सातवीं शताब्दी में ह्वेनत्सांग नाम के एक चीनी यात्री ने भी इस कांचीपुरम की यात्रा की थी। उनके यात्रा-वृत्तान्त में एक पंक्ति इस आशय की है कि उन्होंने अनेक बौद्ध-विहारों के दर्शन किये है। संभवत: कालान्तर में वे कालगर्भ में विलीन हो गये।

परिवर्तन

राजा विशाखदत्त वत्स देश के युवराज थे। जब वे सिंहासनासीन हुए, तब कुछ ही दिनों बाद उन्होंने अपने दरबार में कवियों के आदर-सम्मान करने की परम्परा को बन्द कर दिया। राजा विशाखदत्त को अपने पुरखों की इस परम्परा से प्रेम था, लेकिन राज्य का मुख्य मंत्री मंजुनाथ इसमें बाधक बना। उसकी ऐसी दुष्ट धारणा थी कि जो लोग और कोई काम नहीं करना चाहते, वे कविता करके मुफ़्त में अपना जीवन-यापन करते हैं।

मंत्री मंजुनाथ अक्सर राजा से कहता– "कवियों को राजाश्रय देना व्यर्थ का व्यय है। इससे राज्य का कोष खाली हो जाता है, पर राज्य का कोई हित नहीं होता।"

राजा विशाखदत्त कवियों को आश्रय देना तो चाहता था, पर वह अपने वयोवृद्ध, राज्य के हितैषी मंत्री के इस सुझाव का विरोध करने में संकोच अनुभव करता था।

एक दिन राजा विशाखदत्त के पास चान्द्रायण नाम का एक युवा कवि आया और राजा को अपना परिचय देकर बोला– "महाराज, मैं पंडित सुधाकर भट्ट का पोता हूँ। मेरे दादा सुधाकर भट्ट आप के दादा के दरबारी कवि थे। इस समय राजाश्रय न होने का कारण मेरा परिवार निर्धन अवस्था में है। मैं भी अपने दादा की भाँति कविता करता हूँ। एक ही समय अष्टावधान तथा शतावधान कर सकता हूँ। मैं अपनी विद्या प्रदर्शन करके राजाश्रय प्राप्त करने की आशा से आप की सेवा में आया हूँ।"

राजा विशाखदत्त को यह सुनकर दुख हुआ कि किसी समय वत्सदेश को अपनी विद्वत्ता से यश-प्रतिष्ठा दिलानेवाले पंडित सुधाकर भट्ट के वंशज आज दीन-हीन

श्यामलाल गुप्त

अवस्था में हैं। चान्द्रायण एक होनहार युवक था और पूर्ण आत्म-विश्वास लेकर उनके पास आया था। उसे राजाश्रय देना उनका कर्त्तव्य था।

राजा विशाखदत्त ने चान्द्रायण से कुछ कहना चाहा कि तभी मंत्री मंजुनाथ ने दखल देकर कहा–"पंडित सुधाकर भट्ट की विद्वत्ता से हम सभी लोग भलीभाँति परिचित हैं। लेकिन, दादा-परदादाओं का नाम अपनी स्वार्थ-सिद्धि करना कोई ऊँची बात नहीं है। चान्द्रायण, तुम एक युवक हो। शरीर से बलशाली हो। कविता से जीवन-यापन क्यों करना चाहते हो! कोई और मार्ग क्यों नहीं ढूंढ लेते?"

मंत्री के मुंह से इस प्रकार की बात सुनकर चान्द्रायण चकित रह गया। फिर संभलकर बोला–"यह बात सही है कि मैं अपना पेट भरने के लिए राजाश्रय प्राप्त करने आया हूं। कविता करना मेरी विशेष योग्यता है। जिस दिशा में मैं उत्तम कार्य कर सकता हूं, वही मेरी आजीविका का माध्यम भी बन जाये, इसीलिए राजाश्रय पाना चाहता था। फिर भी, महाराज मुझे अपने राज्य में अगर और कोई कार्य सौंपना चाहते हैं तो मैं निस्संकोच उस कार्य को करना चाहूंगा।"

राजा विशाखदत्त कवि चान्द्रायण की विनम्रता से प्रभावित होकर मंत्री मंजुनाथ को समझाने के स्वर में बोले–"महामंत्री, यह युवक प्रतिभाशाली है और आर्थिक कठिनाइयों के कारण नौकरी पाने की अपेक्षा रखता है। आप इसके दादा के कारण ही सही, इसे किसी काम पर लगा दें।"

मंजुनाथ ने कहा–"हमारी अश्वशाला में एक सप्ताह पहले अश्वों की देखभाल करनेवाला साइस मर गया है। अगर चान्द्रायण को आपत्ति न हो तो इसे वह काम दिया जा सकता है।"

चान्द्रायण तनिक भी विचलित नहीं हुआ और बोला–"श्रम करना भगवान की

अर्चना के समान है। यह श्रम शारीरिक भी हो सकता है, बौद्धिक अथवा मानसिक भी। क्षुधा की पूर्ति के लिए नीतिबद्ध होकर जो भी कार्य किया जाये, उसमें ऊँच-नीच का भेद नहीं होता। आज मैं जिस अवस्था में हूँ, उसमें मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मुझे कोई काम मिल जाये।"

चान्द्रायण का उत्तर सुनकर मंत्री मंजुनाथ चकित रह गया। बोला– "महाराज, युवक चान्द्रायण बड़ा ही चालाक मालूम होता है। कुलीन, शिक्षित और संस्कारी होने पर भी इसने अश्वशाला में साइस के काम को स्वीकार कर लिया। निश्चय ही इस बात के पीछे कोई कपट और धूर्तता है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं इस तथ्य को स्पष्ट भी कर सकता हूँ।"

राजा विशाखदत्त और चान्द्रायण ने विस्मित होकर मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने कहा–"महाराज, चान्द्रायण यह प्रमाणित करना चाहता है कि आप के राज्य में कवियों को आश्रय नहीं मिलता है, इसलिए कवि लोग अश्वशालाओं में साइस का काम करते हैं। आप पर कलंक लगाने के विचार से ही इसने हमारे सुझाव को तुरन्त स्वीकार कर लिया है।"

चान्द्रायण अपने क्रोध पर नियंत्रण रखकर राजा से बोला–"महाराज, मैं आप के दरबार में कवि के रूप में राजाश्रय प्राप्त करने आया था। ठीक इसके
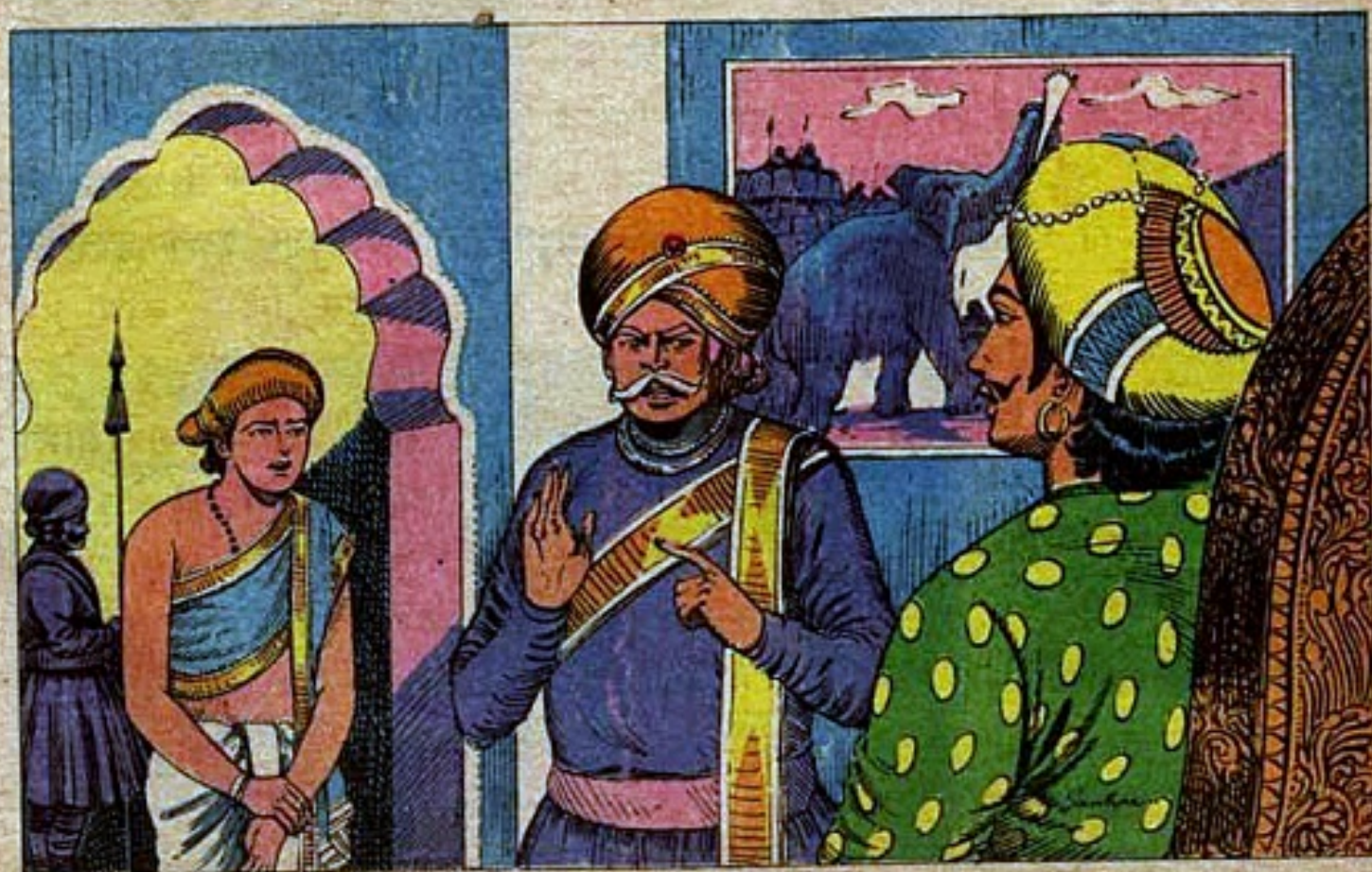
विपरीत अगर मंत्री महोदय मुझे अश्वशाला में साइस का काम सौंपना चाहते हैं तो इसके पीछे निहित इनके उद्देश्य को समझना मुश्किल बात है। फिर भी उन्होंने मुझे जो काम सौंपा, उसे मैंने उत्तम उद्देश्य से ही स्वीकार किया है।"

"वह उत्तम उद्देश्य क्या है?" मंत्री ने पूछा।

चान्द्रायण ने एक क्षण मौन रहकर उत्तर दिया–"मंत्रीवर, जब लोगों को यह पता लगेगा कि महाराजा विशाखदत्त के राज्य में एक मामूली-सा साइस भी अच्छी कविता करता है तो क्या इस बात से महाराज की यश-प्रतिष्ठा को चार चांद नहीं लग जायेंगे?"

चान्द्रायण के उत्तर में निहित इस प्रश्न से मंत्री निरुत्तर होकर निश्चेष्ट-सा हो गया। फिर कवि ने कहा–"कवियों के लिए मंत्री महोदय के मन में जो हलकी धारणा है, उसे मैं समझ नहीं पाता हूँ। किसी भी देश की प्रतिष्ठा जितनी उसके व्यापार-वाणिज्य तथा अन्य समृद्धियों पर निर्भर करती है; उतनी ही कवियों की प्रतिभा पर। मनुष्यों को शारीरिक पोषण और सरक्षण के लिए जिस तरह अन्न और वस्त्र चाहिये, उसी तरह मानसिक उल्लास और आनन्द के लिए कविता, गान और संगीत की आवश्यकता है।"

चान्द्रायण की बात सुनकर मंत्री मंजुनाथ के चेहरे पर मुस्कान छा गयी। वह बोला–"चान्द्रायण, तुम अभी बहुत छोटे हो, पर तुम्हारा ज्ञान बड़ा है। आज तुमने मेरी आँखे खोल दीं। मेरा विश्वास है कि तुम कविता के क्षेत्र में अपने दादा के समान ही प्रतिभाशाली बन सकोगे और यश प्राप्त करोगे। आज से मैं कवियों के आदर-सम्मान का विरोध नहीं करूँगा।"

मंत्री मंजुनाथ के अन्दर यह परिवर्तन देखकर राजा विशाखदत्त को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। चान्द्रायण भी आनन्दित हो उठा। उसी दिन राजा ने चान्द्रायण का भव्य सम्मान कर उसे राजकवि का पद दिया।
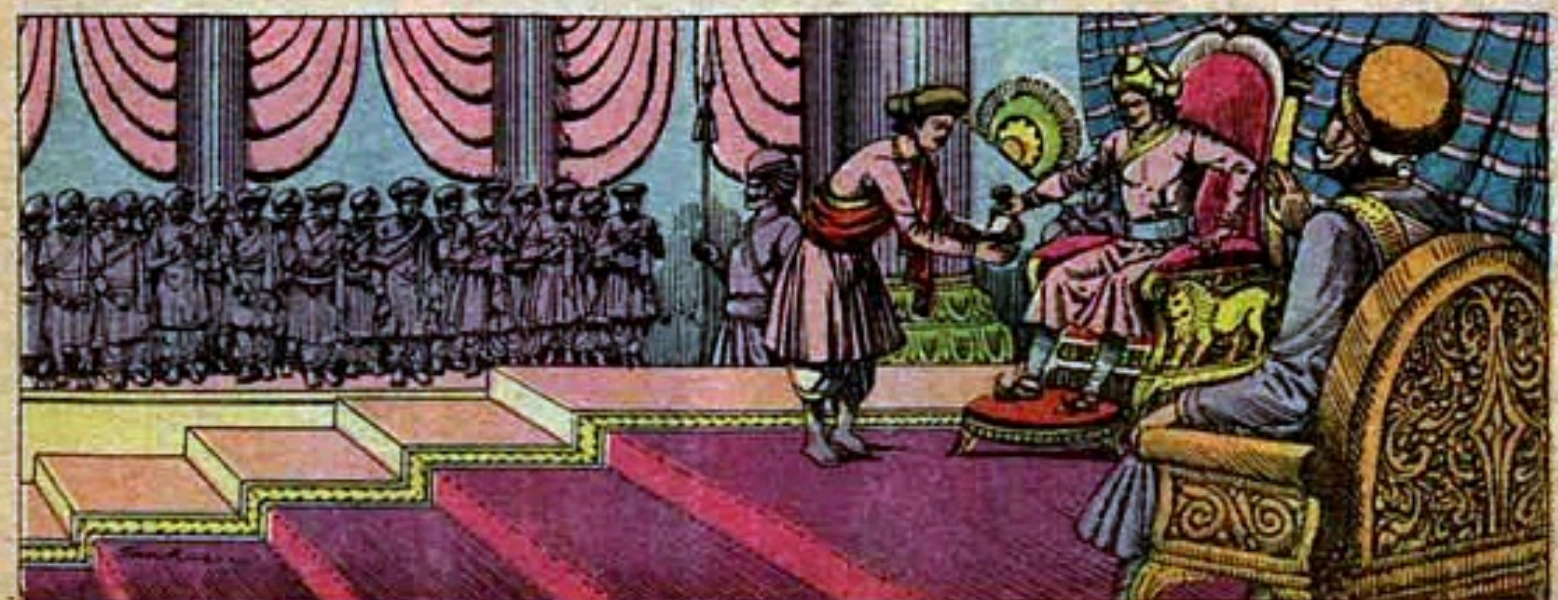
महर्षि अगस्त्य ने श्रीरामचन्द्र से आगे कहा—सुकेश के पुत्र माल्यवन्त, माली और सुमाली ने लंका में अपना निवास बनाया। ये सब अपने घर-परिवारों के साथ सुखपूर्वक दिन बिताने लगे। इन तीनों ने जो वरदान प्राप्त किये थे, उनके कारण ये अहंकारी हो गये और त्रिभुवन में आतंक मचाने लगे।

राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित होकर देवगण और ऋषि-मुनि महेश्वर के पास पहुँचे और बोले—"हे जगदीश्वर, हे त्राता, सुकेश के पुत्रों ने ब्रह्मा से जो वरदान प्राप्त किये, उनकी शक्ति से उन्होंने स्वर्ग से देवताओं को निकाल दिया है और स्वर्ग पर अधिकार कर लिया है। वे मुनियों के गृह और आश्रमों को तहस-नहस कर घमंडी होकर घूमते हैं। वे इस बात की घोषणा करते हैं कि हम ही ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, इन्द्र, यम, वरुण, चन्द्र और सूर्य हैं। उनसे हमारी रक्षा कीजिये।"

महेश्वर सुकेश के पक्षपाती थे, इसलिए उन्होंने देवों और मुनियों से कहा—"देव, मुनिगण! उन राक्षसों का संहार करना मेरे लिए संभव नहीं है। आप सब विष्णु के पास जायें। वे अवश्य आप लोगों की सहायता करेंगे। इसके अलावा वे ही उनका विनाश करने में समर्थ हैं।"

देव, मुनियों ने महेश्वर की जयकार कर विदा ली और विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने उनके सामने अपना सारा वृत्तान्त

२. रावण का जन्म

सुनाकर अन्त में कहा–"भगवन, त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका नगर में बसे राक्षसों का वध करके हमारी रक्षा कीजिये! आप के अलावा और कोई हमारा रक्षक नहीं है।"

विष्णु ने उन्हें अभयदान देकर कहा–"मैं सुकेश एवं उसके तीनों पुत्रों को अच्छी तरह जानता हूँ। उनके अत्याचार बढ़ रहे हैं। मैं अवश्य उनका संहार करूँगा। आप ज़रा भी चिन्ता न करें!"

विष्णु से यह वचन पाकर देव और ऋषिगण परम आनन्दित हुए और उनका स्तवन करते हुए अपने निवास-स्थान को लौट गये।

यह सारा समाचार शीघ्र ही लंका में पहुँच गया। माल्यवन्त ने अपने छोटे भाइयों से कहा–"सुनो, देवता और ऋषि मिलकर हमारे संहार का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसा सुनने में आया है कि वे लोग सर्वप्रथम महेश्वर के पास गये और हमारे संहार के लिए प्रार्थना की। तब महेश्वर ने हमारे विनाश में अपनी असमर्थता प्रकट कर उन्हें विष्णु के पास जाने के लिए कहा। वे विष्णु के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि वे हमारा अन्त करें। विष्णु ने उन्हें हमारे संहार का वचन दिया है। यदि विष्णु ने हमारे वध का निश्चय किया है तो हमें परामर्श कर अपने कर्तव्य का विचार कर लेना चाहिए। विष्णु ने हिरण्यकश्यप जैसे अनेक दैत्यों का वध किया है। अनेक वरदान प्राप्त, माया रचने में कुशल कितने ही राक्षस उनके साथ युद्ध करके विनाश को प्राप्त हुए हैं। अनेक यज्ञों को संपन्न करनेवाले, अनेक दिव्यास्त्र-प्राप्त राक्षस भी विष्णु के सामने टिक नहीं सके। इन सब बातों का विचार कर हमें कोई ठोस निर्णय लेना होगा।"

बड़े भाई माल्यवन्त की बात सुनकर माली और सुमाली ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा–"हम लोग पंडित हैं।

हमने अनेक यज्ञ-याग किये हैं। हमारे पास अपार धन-सम्पदा है। हमने अत्यन्त बलवान शत्रुओं को भी पराजित किया है। चाहे विष्णु हो, रुद्र हो या इन्द्र हो, हमारे सामने टिक नहीं सकेंगे। हमारी शक्ति को देखकर तीनों लोक थर-थर काँप उठते हैं। विष्णु को हमसे द्वेष हो, ऐसा कोई कार्य हमने नहीं किया। देवताओं ने मिलकर उन्हें हमारे विरुद्ध उकसाया है। हम अपनी सेनाएँ ले जाकर उनके अहंकार को दमन करेंगे।"

ऐसा निर्णय कर तीनों राक्षस भाइयों ने युद्ध की पूरी तैयारी कर देवताओं पर आक्रमण कर दिया। लंका से अनेक रथों, हाथी, घोड़ों पर विशाल सैन्य दल देवताओं पर घेरा डालने के लिए निकल पड़ा। माली इस सैन्य दल का संचालन कर रहा था। लंका से इतना बड़ा सैन्य-समूह निकल जाने के कारण लंका नगरी उजाड़-सी हो गयी।

राक्षसों को युद्ध के लिए तैयार देख विष्णु ने चमकता हुआ कवच धारण किया। पीताम्बर पहना और धनुष-बाण, शंख, चक्र, गदा और खड्ग लेकर गरुड़ पर सवार हो गये। वे देवताओं की सेना में पहुचे। अब देवताओं और राक्षसों के बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया।

विष्णु ने अपने चक्र एवं तीक्ष्ण बाणों से असंख्य राक्षसों का वध किया। तब माली ने विष्णु का सामना किया और भयानक युद्ध करके विष्णु के वाहन गरुड़ को घायल कर दिया। एक बार तो विष्णु को युद्धभूमि से भागना पड़ा, लेकिन दूसरी बार उन्होंने अपने चक्रायुध से माली का सिर काट दिया। माली को हत जान सुमाली एवं माल्यवंत अपनी राक्षस-सेनाओं के साथ लंका में भाग गये। विष्णु ने उनका पीछा किया और अनेक राक्षसों का संहार किया।

तब माल्यवन्त ने विष्णु को ललकार कहा—"आप क्षत्रिय-धर्म का ख्याल किये

बिना युद्ध भूमि से भाग रहे सैन्य दल का संहार कर रहे हैं। ऐसे योद्धा को तो वीर-स्वर्ग भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। यदि आप को युद्ध करना है तो मेरे साथ युद्ध कीजिये।" और वह विष्णु के सामने जा खड़ा हुआ।

"तुम लोग चाहे युद्ध-क्षेत्र से भागो, चाहे पृथ्वीतल से। अगर तुम पाताल-लोक में जाकर भी छिपोगे तो मैं ढूंढकर मार डालूंगा। मैंने देवताओं को तुम सब के संहार का वचन दिया है। मैं अपने वचन का पालन अवश्य करूंगा।" विष्णु ने कहा।

इसके बाद माल्यवन्त और विष्णु भिड़ गये। माल्यवन्त ने विष्णु एवं गरुड़ पर अनेक मारक प्रहार किये, गरुड़ ने अपने पंख फड़फड़ाकर झंझावात पैदा किया, जिससे माल्यवान हवा में उड़ गया और सुमाली यह सब देख अपनी सेना-सहित लंका में भाग गया। बाद में माल्यवन्त भी प्राण बचाकर अपनी सेना में जा मिला और अपमानित की तरह लंका में पहुँचा।

इसके बाद विष्णु ने लंका में बस रहे राक्षसों के साथ अनेक युद्ध किये, असंख्य राक्षसों का संहार किया। इससे आतंकित हो, बचे हुए राक्षस अपने घर-परिवारों के साथ लंका को छोड़ पाताल में जा बसे। उन्होंने सुमाली को अपना राजा घोषित किया। रावण और कुम्भकर्ण से भी अधिक बलवान माल्यवन्त आदि राक्षस विष्णु के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुए।

राक्षस जब लंका को छोड़कर चले गये, तब विश्रवसु के पुत्र कुबेर पुनः लंका लौट आये और सुखपूर्वक रहने लगे।

कुछ काल इसी तरह बीत गया। तब एक दिन सुमाली अपनी अत्यन्त रूपवती पुत्री कैकसी को लेकर पृथ्वीलोक में विहार करने के लिए पाताल-लोक से निकाला। जब वे एक सुरम्य स्थल पर टहल रहे थे तब पुष्पक विमान में बैठा कुबेर उन्हें

दिखाई दिया। वह अपने पिता विश्रवसु से मिलने जा रहा था।

कुबेर के वैभव के साथ अपनी दुरवस्था की तुलना करके सुमाली सोचने लगा– "वह कौन सा तरीक़ा है कि हम लोग भी इतने सुख-ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकें!" उसने कोई निर्णय करके फिर अपनी लक्ष्मी जैसी पुत्री कैकसी से कहा–"बेटी, तुम विवाह के योग्य हो चुकी हो। अनेक युवक तुमसे विवाह करना चाहते हैं। मुझे ऐसी शंका है कि तुम उन सम्बन्धों को स्वीकार नहीं करोगी। तुमने विश्रवसु के पुत्र कुबेर का वैभव स्वयं अपनी आँखों से देखा है। विश्रवसु पुलस्त्य ब्रह्म का पुत्र है, महामुनि है, तुम उसकी सेवा करोगी तो तुम्हें भी कुबेर जैसे पुत्र होंगे।"

कैकसी अपने पिता की सम्मति के अनुसार उस स्थान पर पहुँची, जहाँ विश्रवसु तपस्या कर रहे थे। उस समय विश्रवसु अग्नि की अर्चना कर रहे थे। पूर्ण चन्द्र जैसी सुशोभना कैकसी को देख विश्रवसु ने पूछा–"सुन्दरी, तुम किसकी पुत्री हो? कहाँ से आयी हो? तुम्हारे यहाँ पर आने का प्रयोजन क्या है? सब सच-सच बता दो, वरना तुम्हें इसका फल भोगना पड़ेगा और बाद पछताओगी।"

कैकसी ने हाथ जोड़कर कहा–"मुनीश्वर, आप अपने तपोबल से सब कुछ जानने में समर्थ हैं। मैं अपने पिता की आज्ञा से आयी हूँ। मेरा नाम कैकसी है।"

"हाँ, मैं समझ गया। मेरे द्वारा पुत्रों की कामना लेकर आयी हो।" विश्रवसु बोले। फिर उन्होंने विधिपूर्वक कैकसी के साथ विवाह किया और कहा–"तुम संतान की कामना लेकर राक्षसघड़ियों में मेरे पास आयी हो, इसलिए तुम्हारे गर्भ से अत्यन्त भयंकर एवं क्रूर राक्षस पैदा होंगे।"

"आप जैसे तपोनिष्ठ महामुनि के द्वारा क्या मुझे ऐसी सन्तान प्राप्त होगी? मुझे

ऐसी संतान नहीं चाहिए। आप मुझे उत्तम संतान प्रदान कीजिए।" कैकसी ने विनती की। वह बड़ी देर तक अपने पति की अनुनय-विनय करती रही।

तब विश्रवसु ने कहा—"अच्छा, कैकसी! तुम्हारा छोटा पुत्र इस वंश के अनुरूप होगा।"

कुछ समय बाद कैकसी ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह देखने में विकृत और विकराल था। उसे राक्षस का रूप, भयानक आकृति, दस सिर, बीस हाथ, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, काला रंग और लाल ओंठ जैसे अंग-प्रत्यंग मिले थे। उस बालक के दस सिर देख विश्रवसु ने उसका नाम दशानन रखा। वही रावण कहलाया।

रावण के बाद कुम्भकर्ण जन्मा। वह महाबलशाली था। उसकी विशाल देह पर्वत के समान और विकराल जानवरों जैसी भारी थी। इसके बाद सूप जैसे नाखूनोंवाली शूर्पणखा पैदा हुई। सब से अन्त में विभीषण का जन्म हुआ, जो सत्यशील और विनम्र था।

रावण और कुम्भकर्ण वन-प्रदेश में ही बढ़ने लगे और अपने असाधारण बल से सारे वनवासियों को आतंकित करने लगे। कुम्भकर्ण महोदर था। वह ऋषि-मुनियों को पकड़ कर उन्हें अपना ग्रास बना लेता। विभीषण का आहार-विहार अत्यन्त संयमित था। वह स्वाध्याय करता और धर्ममार्ग का अवलम्बन करते हुए जीवन बिताता।

ये सब लोग विश्रवसु के आश्रम में ही रहते थे। एक दिन कुबेर पुष्पक विमान पर सवार होकर अपने पिता के दर्शनों के लिए आया। कुबेर का तेज एवं वैभव देख कैकसी ईर्ष्या से भर उठी और अपने ज्येष्ठ पुत्र रावण से बोली—"पुत्र, क्या तूने अपने बड़े भाई कुबेर का वैभव देखा है? तुम दोनों एक ही पिता की संतान हो। पर तुम अपनी दशा देखो, कैसी है? बेटा, अगर तुम भी कुबेर के सदृश बन जाओ तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त होगी।"

रावण प्रतापी और पराक्रमी था। माता कैकसी की बात सुनकर वह उत्तेजित हो उठा और बोला—"माँ तुम चिता मत करो! मैं अपने सौतेले भाई कुबेर के समान ही नहीं, बल्कि उससे भी बढ़कर ऐश्वर्यों का स्वामी बनूंगा।"

रावण ने अपनी माता को वचन दिया और इसके बाद उसने संकल्प किया कि कुम्भकर्ण के साथ मिलकर कुछ महान कार्य करने हैं। वह अपने भाइयों को साथ लेकर गोकर्णाश्रम गया और वहाँ घोर तपस्या करने लगा। कुम्भकर्ण और विभीषण भी तपस्या में लग गये।

रावण ने अन्न-आहार का त्याग किया और दस हज़ार वर्ष तक तप करता रहा। वह एक हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर अपना एक सिर काटता और अग्निकुंड में डाल देता। जब दस हजारवाँ वर्ष पूर्ण हुआ, तब उसका एक ही सिर बच गया था, शेष नौ आहूत हो चुके थे। रावण अपना दसवाँ सिर भी काटने को तत्पर हुआ, तब ब्रह्मा दिक्पालों के साथ प्रत्यक्ष हुए और बोले—"दशानन, मैं तेरी तपस्या पर प्रसन्न हूँ। तू कोई वर माँग।"

ब्रह्मा के प्रत्यक्ष दर्शन से रावण को परमानन्द हुआ। उसने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और बोला—"पितामह! प्राणियों को मृत्यु से बढ़कर कोई भय नहीं है। इसलिए आप मुझे कभी भी न मरने का वर प्रदान कीजिये!"

"वत्स, यह वर संभव नहीं है। तुम कोई और वर माँगो!" ब्रह्मा ने कहा।

"तब आप मुझे यह वर दीजिये कि मैं सुवर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, राक्षस, देव आदि किसी से न मारा जाऊँ। मनुष्य तो मेरे लिए तृण के समान है, उसकी मैं चिन्ता नहीं करता। इसी तरह अन्य प्राणी भी हैं, जिनसे मुझे कोई भय नहीं है।" रावण ने कहा।

ब्रह्मा ने रावण को मनोवांछित वर दिया। इसके साथ ही उसे उसके कटे हुए

सिर भी प्रदान किये और कहा–"तू जैसा रूप चाहेगा, वर प्राप्त कर सकेगा।"

इसके बाद ब्रह्मा ने विभीषण से भी वर माँगने को कहा। विभीषण ब्रह्मा के सामने सिर नवाकर बोला–"पितामह, मेरा मन सदा धर्मपथ का अनुसरण करता रहे और मैं जब भी कामना करूँ, मुझे ब्रह्मास्त्र की स्फूर्ति हो।"

ब्रह्मा ने "एवमस्तु" कह विभीषण की कामना की पूर्ति की और उसे अमर बने रहने का वरदान भी दिया।

ब्रह्मा ने अंत में कुम्भकर्ण से वर माँगने के लिए कहा। तब देवगणों ने चुपके से ब्रह्मा से कहा–"आप इसे वर मत दीजिये। इसने नन्दनवन में विहार करनेवाली सात अप्सराओं को खा लिया है, इन्द्र के दस अनुचरों और कितने ही ऋषि-मुनियों को अपना ग्रास बनाया है। वर पाये बिना ही यह इतना निर्भय और नृशंस है, ऐसी हालत में वर पाने के बाद इसकी क्या दशा होगी।"

देवताओं की बातें सुनकर ब्रह्मा ने सरस्वती का स्मरण किया और सरस्वती के प्रकट होने पर कहा–"तुम कुम्भकर्ण की वाणी को वशीभूत कर लो!"

इसके बाद ब्रह्मा कुम्भकर्ण की ओर उन्मुख होकर बोले–"वत्स, तुम भी वर माँगो!"

वाणी के प्रभाव में आकर कुम्भकर्ण ने कहा–"पितामह, मैं बहुत काल तक निद्रालीन रहने का वर चाहता हूँ।"

ब्रह्मा "तथास्तु" कहकर सपरिकर अदृश्य हो गये।

कुम्भकर्ण की वाणी से उतरकर सरस्वती भी अदृश्य हो गयी।

कुम्भकर्ण तुरन्त चेतन हो गया और चिल्लाकर कहने लगा–"छिः छिः, मैंने कैसा वर माँगा है? देवताओं ने मायाजाल रचकर मुझे धोखा दिया है।"

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करने के बाद श्लेषात्मक-वन में चले गये और वहीं निवास करने लगे।

वर का चुनाव

रामसहाय एक मध्यवित्त गृहस्थ था। उसकी एक बेटी थी, नाम था चन्द्रकला।

चन्द्रकला एक विदुषी युवती थी। रामसहाय को अपनी बेटी के विवाह की चिन्ता थी। इसी सिलसिले में वह चन्द्रपुर और रामपुर के दो रिश्तों को देखने-समझने गया।

वहाँ से लौटकर रामसहाय ने अपनी बेटी चन्द्रकला से कहा—"बेटी, चन्द्रपुर का लड़का देखने में सुन्दर है, सुयोग्य है। पर, मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि उसके सगे-सम्बन्धी भले स्वभाव के लोग नहीं हैं। हाँ, उसकी मित्र-मण्डली अच्छी है। दूसरा रिश्ता रामपुर का है। यह लड़का भी अच्छा है और उसके सगे-सम्बन्धी भी अच्छे हैं। लेकिन ऐसा सुनने में आया है कि उसके दोस्त आवारा और उच्छृंखल हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम्हें कौन-सा रिश्ता पसन्द है?"

"आप चन्द्रपुर का रिश्ता ही स्वीकार कर लीजिये!" चन्द्रकला ने उत्तर दिया।

"बेटी, यह फ़ैसला तुमने किस आधार पर किया?" रामसहाय ने पूछा।

"पिताजी, रिश्तेदारी तो भगवान की तरफ़ से मिलती है। पर, मित्रों का चुनाव हम अपने स्वभाव और अपनी पसन्द के अनुरूप करते हैं। किसी व्यक्ति की मित्र-मण्डली को देखकर हम उसके व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। यही मेरे निर्णय का आधार है।" चन्द्रकला ने मुस्कराते हुए कहा।

मूल्य

जगन्नाथ सूरजकुण्ड का निवासी था। उसके पास एक घोड़ागाड़ी थी। वह पास के शहर बीरमपुर में जानेवाले यात्रियों के लिए किराये पर गाड़ी चलाता था।

एक दिन जगन्नाथ यात्रियों को बीरमपुर शहर में छोड़कर अपने गाँव सूरजकुण्ड लौट रहा था। तभी सूरजकुण्ड के साहूकार रंगनाथ ने जगन्नाथ से पूछा—"जगन्नाथ, अपने गाँव ही लौट रहे हो न?"

"हाँ, जी!" जगन्नाथ ने हामी भरी।

रंगनाथ बड़ा खुश हुआ। वह अपनी थैली गाड़ी में रखकर खुद भी गाड़ी में चढ़ गया और बोला—"मैं बीरमपुर अपने कर्ज़ वसूल करने आया था। वसूली में शाम हो गयी। मैं किराये की गाड़ी की खोज में था कि तुम दिख गये।"

इसके बाद गाड़ी चल पड़ी। अभी जगन्नाथ कुछ दूर गया था कि एक दूकान के पास चिदम्बरम ने गाड़ी रोकने को कहा।

"जगन्नाथ, तुम बड़े ठीक मौक़े पर दिखाई दिये। मैं सामान खरीदकर सूरजकुण्ड वाले किसी ताँगे-इक्के का ही इन्तजार कर रहा था।" यह कहकर चिदम्बरम ने अपने चार बोरे गाड़ी पर लाद दिये और अपनी कमर में खोंसी हुई रुपयों की थैली को टटोलकर गाड़ी में जा बैठा।

घोड़ागाड़ी अभी शहर की सीमा पर ही पहुँची थी कि दो आदमी और गाड़ी पर सवार हो गये। वे दोनों आदमी भी सूरजकुण्ड गाँव के ही थे। उनमें से एक तो पाठशाला का अध्यापक रामनारायण था और दूसरा खेतिहर मजदूर राजाराम था। रामनारायण बीरमपुर एक बजाज का अपना पुराना क़र्ज़ चुकाने गया था।

विमला वार्ष्णेय

रुपये कुछ कम पड़ गये थे, इसलिए उसने एक परिचित मित्र से उधार लेकर कर्ज़ पूरा किया था और अब वह अपने घर वापस लौट रहा था। राजाराम शहर की किसी दूकान में कोई गहना गिरवी रखकर सौ सिक्के लेकर गाँव लौट रहा था।

गाड़ी पर जगन्नाथ के अलावा चार यात्री थे, बातचीत करते हुए रास्ता आराम से कट गया। सूरज डूबने पर गाड़ी गाँव में पहुँची। चारों यात्री गाड़ी से उतर पड़े और जगन्नाथ को गाड़ी का किराया चुकाकर अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन सवेरे जगन्नाथ अपनी गाड़ी में घोड़ा जोत रहा था, कि उसे गाड़ी में पड़े कुछ सिक्के दिखाई दिये। जगन्नाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गिना तो कुल अस्सी सिक्के थे।

जगन्नाथ ने सोचा कि पिछले दिन उसकी गाड़ी में जो चार जन सवार हुए थे, उन्हीं में से किसी के ये सिक्के होंगे। वह बड़ा ईमानदार आदमी था। उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि इन सिक्कों के मालिक तक इन्हें पहुँचा देना है। लेकिन, इस बात का पता लगाना आसान नहीं था कि सिक्कों का असली मालिक कौन है। अगर वह अलग-अलग उन लोगों से जाकर पूछता है तो हर कोई अपने आप को ही मालिक बता देगा।

जगन्नाथ ने इस समस्या पर गहराई से विचार किया, इसी उलझन में एक दिन

बीत गया। दूसरे दिन सवेरे जगन्नाथ ने उन सिक्कों की एक पोटली बनायी और उसे लेकर वह सीधे साहूकार रंगनाथ के घर पहुँचा।

रंगनाथ उस समय अपने घर के बाहर चबूतरे पर बैठा हुआ था। जगन्नाथ उसके पास जाकर बोला—"साहूजी, मुझे अपनी गाड़ी में कुछ सिक्के हाथ लगे हैं। उन सिक्कों को मैंने इस पोटली में बाँध रखा है। मेरा विचार है कि ये सिक्के आप ही के होने चाहिये।" यह कहकर जगन्नाथ ने सिक्कों की पोटली रंगनाथ के हाथों में थमा दी।

रंगनाथ ने पोटली को वहीं चबूतरे पर छोड़ दिया और घर के अन्दर चला गया। कुछ देर बाद बाहर आकर वह बोला—"जगन्नाथ, ये सिक्के मेरे ही हैं। कुल अस्सी सिक्के हैं न?"

"हाँ, हाँ, साहूजी, पूरे अस्सी सिक्के हैं।" जगन्नाथ ने उत्तर दिया।

साहूकार रंगनाथ ने सिक्कों की पोटली उठा ली और कहा—"परसों जब मैं तुम्हारी गाड़ी पर सवार हुआ था, उस वक़्त मेरे हाथ में एक थैली थी। उस थैली में एक तरफ़ एक छेद हो गया है, इस बात पर मेरा ध्यान नहीं गया। उसी में से सिक्के निकल गये। पर जगन्नाथ तुमने इस बात का कैसे पता लगाया कि यह धन मेरा ही है, गाड़ी में तो और भी तीन लोग सवार थे न?"

जगन्नाथ मुस्कराकर बोला—"इन सिक्कों को मैंने कल सुबह ही देखा, इसलिए यह बात तो तय ही हो गयी कि यह पैसा पिछले दिन सवार हुए आप चार लोगों में से ही किसी एक था। फिर मैंने सोचना शुरू किया कि इस पैसे का मालिक कौन हो सकता है? यह पैसा चिदम्बरम का हर्गिज नहीं हो सकता था, क्योंकि सब लोग जानते हैं कि पैसे के मामले में वे कितने चौकन्ने आदमी हैं। इसके अलावा, वे गाड़ी में जितनी देर सवार रहे, उनका हाथ अपनी धन की थैली पर ही रखा रहा।"

"हाँ, यह तो मैंने भी देखा था!" साहूकार थोड़ा हँस कर बोला।

"अब रहा खेतिहर मज़दूर राजाराम! उसका यह धन किसी हालत में नहीं हो सकता था। वह अपने घर का कोई गहना गिरवी रखकर कुल सौ सिक्के लाया था। अगर उसके दो-चार सिक्के भी कम हो जाते तो वह घर जाकर हिसाब देखने के बाद दौड़ा-दौड़ा तुरन्त मेरे पास आता।" जगन्नाथ ने कहा।

"तुमने सचमुच ही इन सिक्कों की समस्या पर गहरा विचार किया लगता है!" रंगनाथ ने कहा।

"अब रही पाठशाला के अध्यापक रामनारायण की बात! वे तो अपना कोई पुराना कर्ज़ चुकाने गये थे और जब पैसे कम पड़े तो उन्होंने अपने किसी मित्र से उधार लेकर वहाँ का कर्ज़ पूरा किया। ऐसी हाल में उनके पास अस्सी सिक्के कैसे हो सकते थे? अब बचे आप! शहर से आप ने अपने कर्ज़ों की रक़म वसूल की थी। ऐसी हालत में आप को घर लौटते ही हिसाब करने की कोई ज़रूरत न थी। मैंने तुरन्त समझ लिया कि वे सिक्के आप के होने चाहिये। इसके अलावा, आप मुझे देखते ही मकान के अन्दर गये और मेरे पास जो राशि थी, उसके बारे में मुझसे कुछ भी पूछे बग़ैर आप ने अपना हिसाब देखा और मुझे कुल सिक्कों की सही संख्या बता दी। इसलिए इस बात में सन्देह की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती कि ये सिक्के आप के हैं।" जगन्नाथ ने सारी स्थिति को स्पष्ट कर दिया।

जगन्नाथ की ईमानदारी और विचार-शीलता पर साहूकार रंगनाथ इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अस्सी सिक्कों की वह पोटली जगन्नाथ के हाथ में थमा दी और कहा—"जगन्नाथ, तुम इनकार मत करो! ये सिक्के तुम्ही ले लो! सचमुच ही ये सिक्के मैं तुम्हें बड़ी प्रसन्नता के कारण दे रहा हूँ। यह तुम्हारे बड़प्पन का एक छोटा-सा मूल्य है।"

भाग्य और दरिद्रता की देवी

किसी गाँव में फ़ज़ल और असल नाम के दो भाई रहते थे। बड़ा भाई फ़ज़ल भाग्यवान और धनी था, जबकि छोटा असल दरिद्र था।

एक साल फ़ज़ल के खेतों की कटाई हुई, तब असल अपने भाई के खेतों की रखवाली का काम करता था। एक दिन असल अनाज के ढेर के पास बैठा अपनी दीन दशा पर विचार कर रहा था। तभी सफ़ेद वस्त्र पहने एक स्त्री वहाँ आयी और सारे खेत में चक्कर काटती हुई नीचे गिरी बालियों को चुनकर पौधे में चिपकाने लगी। जब वह स्त्री असल के क़रीब आयी, तो उसने उस स्त्री का हाथ पकड़ कर पूछा—"बहन, तुम कौन हो और यहाँ पर क्या कर रही हो?"

"मैं तुम्हारे बड़े भाई की भाग्यदेवी हूँ। नीचे गिरी बालियों को व्यर्थ जाते देख उन्हे पौधों में चिपका रही हूँ।" उस स्त्री ने उत्तर दिया।

"मुझे बताओ, मेरी भाग्य देवी कहाँ है?" असल ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"तुम सामने जो पहाड़ देख रहे हो न, वह उस दक्षिणी पहाड़ों के पीछे है।" यह कहकर भाग्यदेवी अदृश्य हो गयी।

असल ने अपनी भाग्यदेवी की खोज में जाने का निश्चय कर लिया। वह अपनी बची-खुची चीज़ों की गठरी बाँधकर चलने के लिए तैयार हो गया।

इतने में चूल्हे के पीछे से दरिद्रता की देवी उठकर आयी और ज़ोर-ज़ोर से दहाड़े मारकर रोती हुई असल से बोली—"क्या तुम मुझे यहाँ छोड़कर चले जाओगे? मुझे भी अपने साथ ले चलो।"

असल ने उसे अनेक प्रकार से समझाया कि वह कमज़ोर और बूढ़ी है, बहुत दूर

बोहिमिया की लोक-कथा

पैदल चलना है, वह चल नहीं सकेगी। पर दरिद्रता की देवी नहीं मानी।

अन्त में असल बोला–"अच्छी बात है, तुम्हें मैं अपने साथ ले चलता हूँ। तुम इस बोतल के अन्दर आ जाओ। मैं इन चीज़ों के साथ तुम्हें भी ले चलूँगा।"

असल की बात सुनकर दारिद्रय की देवी लघु रूप रखकर बोतल में घुस गयी। असल नें कार्क लगाया और घर से चल पड़ा। रास्ते में एक जगह उसे दलदल दिखाई दी। असल ने दारिद्रय देवीवाली बोतल को दलदल की गहराई में गाड़ दिया। तब आगे बढ़ा।

असल ने दक्षिणी पहाड़ों को पार किया और एक शहर में पहुँचा। वहाँ एक बुज़ुर्ग से असल की मुलाक़ात हुई। उसका नाम था सेफरिस। सेफरिस ने असल को नौकरी देना स्वीकार कर लिया।

सेफरिस असल से बोला–"देखो, मैं धरती के नीचे, मतलब भूगर्भ में अपने लिए एक घर बनाना चाहता हूँ। उसकी नींव के लिए तुम्हें बड़ी गहराई तक मिट्टी खोदनी पड़ेगी। हाँ, मिट्टी खोदते समय तुम्हें जो कुछ मिलेगा, वह सब तुम्हारा ही होगा।" सेफरिस ने सब बात स्पष्ट कर दी।

असल ने सेफरिस की शर्त मान ली और भूगर्भगृह की नींव खोदने लगा। उसे थोड़ा-सा सोना मिला। सेफरिस ने उसे बताया कि यह सोना असल का ही है। पर, असल ने स्वीकार न किया और आधा सोना सेफरिस को दे दिया।

असल ने अपना खुदाई का काम चालू रखा। जब वह काफ़ी गहरे तक खोद चुका तो उसे ज़मीन के गर्भ में एक झोंपड़ी जैसी दिखाई दी। उसके अन्दर स्वर्ण-मुद्राओं तथा रत्नों के ढेर थे। उसी में एक भारी सन्दूक भी था। सन्दूक के अन्दर से उसे यह आवाज़ सुनाई दी–"सन्दूक खोलो, सन्दूक खोलो।"

असल ने सन्दूक का ढक्कन खोला, तब उसके भीतर से एक देवी बाहर निकली।

वह भी सफ़ेद वस्त्र धारण किये हुए थी। असल ने देवी से पूछा—"तुम कौन हो?"

"मैं तुम्हारी भाग्यदेवी हूँ! तुम मुझे ही ढूंढ रहे थे न? आज से मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।" यह कहकर भाग्यदेवी अदृश्य हो गयी।

ज़मीन के गर्भ में जो ख़जाना प्राप्त हुआ था, उसे बुज़ुर्ग सेफ़रिस को दिखाकर असल ने आधा भाग उसे दे दिया।

असल अब करोड़पति बन गया था। वह अपने गाँव लौट आया और जो भी दीन-दुखी दिखाई देता, उसकी सहायता करता।

एक दिन एक गली में असल की मुलाक़ात बड़े भाई फज़ल से हो गयी। असल बड़े भाई के गले मिला और अपने घर ले जाकर उसे सारा वृत्तान्त सुनाया। उसने कई दिन तक फज़ल का खूब स्वागत-सत्कार किया, बड़े-बड़े भोज किये। जब फज़ल अपने घर लौटने को हुआ तो उसने उसकी पत्नी एवं बच्चों के लिए कई क़ीमती उपहार दिये।

फज़ल अपने छोटे भाई के वैभव को सहन नहीं कर पाया। उसका हृदय ईर्ष्या से भर उठा और उसके अन्दर यह दुर्बुद्धि पैदा हुई कि किसी तरह वह दरिद्रता की देवी फिर से असल के घर चली जाये।

फज़ल अपने छोटे भाई असल की बताई हुई दलदल के क़रीब गया और उसने बोतल निकाल कर उसका कार्क खोल दिया।

दूसरे ही क्षण दरिद्रता की देवी बोतल से बाहर निकली और फटाक से बड़े भाई को आलिंगन में कस लिया। फिर बोली—"तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। अब मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी।"

फ़ज़ल ने दरिद्रता की उस देवी को फिर से गाड़ देने की कोशिश की। पर उसे सफलता नहीं मिली। रास्ते में चोरों ने उसके सारे उपहार लूट लिये।

जब फज़ल घर वापस आया तो उसने देखा, उसका घर, अन्न का भण्डार, घास, पुआल सब जलकर भस्म हो गये हैं और खेतों की सारी फ़सलें बाढ़ में बह गयी हैं।

बड़ी बही

जहीरपुर गाँव में मनसुखराम नाम का एक माली रहता था। वह बड़ी उम्दा सब्जियाँ पैदा करने में कुशल था। उसके पास थोड़ी सी ज़मीन थी। वह उसमें खाद डालता, उसकी क्यारियाँ बनाता और वहाँ साग-सब्ज़ी पैदा कर उन्हें हाट में अच्छे दामों पर बेच आता। अपनी पैदावार से मनसुखराम को जो कुछ मिलता, उसमें वह पूरी तरह सन्तुष्ट रहता था। अपनी सब्जियों के लिए मनसुखराम में इतना प्रेम था कि वह अपनी पसन्द के कुम्हड़ों आदि को प्यारे, सुन्दर नाम दे दिया करता था।

जहीरपुर में ही गंगाराम नाम का एक और माली भी था। गंगाराम के पास मनसुखराम की अपेक्षा काफ़ी बड़ी ज़मीन थी, पर वह साग-सब्जियाँ पैदा करने में कोई सूझ-बूझ नहीं बरतता था। न वह कुशल था, न सहनशील, पर पैसा ज़्यादा से ज़्यादा कमाना चाहता था। गंगाराम को अपनी सब्जियों के वे दाम भी नहीं मिलते थे जो मनसुखराम को मिल जाते थे।

जहीरपुर के लोग अक्सर गंगाराम को छेड़ देते—"अरे भाई, तुम थोड़ा पढ़े-लिखे हो, मनसुखराम तो काला अक्षर भैंस बराबर है। पर तुम उसकी तरह साग-सब्ज़ी नहीं उगा सकते।"

एक वर्ष मनसुखराम ने बड़े उम्दा कुम्हड़े पैदा किये। वे इतने बड़े और भारी थे कि पहले कभी किसी ने देखे न थे। उन्हें देख मनसुखराम फूला न समाता। उसने बड़े प्यार से अपने कुम्हड़ों का नाम रखा—'ऐरावत', 'शरबत का कलश', 'गणेश', 'दादा' 'सुवर्ण भांड', आदि। उस वर्ष कुल चालीस कुम्हड़े पैदा हुए।

अगले दिन कुम्हड़ों को हाट में ले जाना था। मनसुखराम पहली शाम खेत में गया

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित एक कहानी

और उसने एक-एक कुम्हड़े को देखकर यह ध्यान में रख लिया कि कौन से कुम्हड़े तोड़कर गाड़ी में हाट ले जाने हैं। उस रात मनसुखराम को नींद नहीं आयी। उसे अपने कुम्हड़ों से बहुत ही प्यार था। उन्हें अपने हाथों से बेचना ऐसा लग रहा था, मानो लाड़-प्यार से पाली गयी लड़कियों को ससुराल भेजना हो।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह मनसुखराम गाड़ी लेकर बगीचे में पहुँचा। कुम्हड़ों के खेत के पास आते ही सूने आवालों को देख मनसुखराम का दिल दहल उठा। बड़े और तैयार कुम्हड़ों को कोई तोड़कर ले गया था। मनसुखराम को लगा कि उसका सिर फट जायेगा। वह पागल की भाँति कुछ देर क्यारियों के बीच घूमता रहा और कुम्हड़ों की चोरी करनेवाले को कोसता रहा।

तभी मनसुखराम के मन में यह विचार आया कि कुम्हड़े एक-दो नहीं, पूरे चालीस हैं, जायेंगे कहाँ? जिसने चुराये होंगे, वह उन्हें आसानी से पहचान लेगा।

मनसुखराम उसी क्षण गाड़ी पर सवार होकर हाट की ओर चल पड़ा। वह एक घंटे के अन्दर वहाँ पहुँच गया और साग-सब्ज़ियों की दूकानों के चक्कर काटने लगा। एक दूकान में उसने देखा कि कुम्हड़ों का ढेर लगा हुआ है। मनसुखराम तुरन्त दूकानदार के पास पहुँचा और गुस्से में आकर बोला—"देखूँ तो तुम्हारी करतूत?

तुम मेरे कुम्हड़ों की चोरी कर उन्हें बेचना चाहते हो?"

मनसुखराम की बात सुनकर दूकानदार चकित हो उठा और बोला—"मैंने किसी के कुम्हड़े चोरी नहीं किये। तुम्हारे गाँव का गंगाराम थोड़ी देर पहले इन कुम्हड़ों को बेचकर बीस रुपये ले गया है।"

सारी बात सुन रहा, बगल में खड़ा एक आदमी बोला—"गंगाराम अभी गाँव नहीं गया है। वह पास की एक दूकान में बैठा है।"

मनसुखराम तुरन्त हाट के अधिकारी के पास गया और अपनी फ़रियाद दर्ज करायी कि गंगाराम ने उसके कुम्हड़ों की चोरी की है और उन्हें हाट में बेच दिया है।

गंगाराम को उस सब्ज़ीवाले की दूकान के पास बुलाया गया।

अधिकारी नवलकिशोर ने मनसुखराम से पूछा—"ये कुम्हड़े तुम्हारे है, इसका क्या सबूत है?"

"सबूत और क्या होगा? मैंने ही तो इन्हें पैदा किया है। मैं एक-एक कुम्हड़े को अलग से जानता हूँ। देखो, यह 'ऐरावत' है, यह रहा 'गणेश' और यह रहा 'शरबत का कलश'।" मनसुखराम एक-एक कुम्हड़ा दिखाने लगा।

वहाँ पर जो लोग एकत्रित हुए थे, वे मनसुखराम के भोलेपन पर हँस पड़े। अधिकारी नवलकिशोर भी मुस्करा उठा, बोला—"सुनो, इन कुम्हड़ों को सिर्फ़ तुम

पहचान लो, इतना काफ़ी नहीं है। कोई और लोग भी इन्हें पहचानें, ऐसी गवाही की ज़रूरत है।"

मनसुखराम की समझ में कुछ नहीं आया। तब नवलकिशोर गंगाराम की तरफ़ मुड़ा और उससे पूछा—"देखो, मनसुखराम कहता है कि तुमने इन कुम्हड़ों की चोरी की है। तुम्हारे पास इसका कोई जवाब है?"

"मनसुखराम निर्बुद्धि है। मेरे पास मेरी बही है। उसमें मैं अपनी साग-सब्जियों की पैदावार और बिक्री का पूरा हिसाब लिखता हूँ। अगर आप चाहें तो मैं उस बही को लाकर आप को दिखा सकता हूँ।"

यह बात सुनकर मनसुखराम बोला—"हुज़ूर, ये कुम्हड़े मेरे ही हैं, इस बात को साबित करने के लिए मेरे पास भी बहुत बड़ी बही है, मैं भी उसे ले आता हूँ।"

मनसुखराम की बात सुनकर गंगाराम ठठाकर हँस पड़ा।

अधिकारी ने अपने दो कर्मचारियों को उनके साथ जहीरपुर भेजा। कुछ देर में सब लौट आये। गंगाराम के पास हिसाब बही थी और मनसुखराम के पास अंगोछे की एक पोटली थी।

गंगाराम की हिसाब की बही में लिखा था कि उसने उसीदिन अपने बगीचे के खेत से चालीस कुम्हड़े तोड़े और हाट ले गया।

"तुम्हारी बही कहाँ है?" अधिकारी ने पूछा।

मनसुखराम ने अपने अंगोछे की गठरी खोलकर चालीस डंडियाँ निकालीं और बोला—"हुज़ूर, यही मेरी बही है।" इसके बाद वह एक-एक डंडी निकालकर उन कुम्हड़ों पर लगाता गया। वे सब डंडियाँ उन कुम्हड़ों पर भली प्रकार बैठ गयीं।

अधिकारी नवलकिशोर ने गंगाराम से तुरन्त मनसुखराम को कुम्हड़ों का मूल्य और हरजाना दिलवाया। इसके बाद से जहीरपुर के लोग गंगाराम को 'कुम्हड़ों का चोर' कहकर पुकारने लगे।

जंगली चूहा

जंगली चूहे में एक ही रात में लगभग साठ गज लम्बी सुरंग खोदने की शक्ति होती है।

विलम्ब से खिलनेवाले फूल का पौधा

विश्व भर में बड़े लम्बे समय के बाद पुष्पित होनेवाला पौधा पूयारायमोंडी है जो बहुत कम पाया जाता है और जो बोलिविया में है। आठ फुट की चौड़ाई में फैलनेवाला तथा पैंतीस फुट की ऊँचाई तक बढ़नेवाला यह पौधा डेढ़ सौ वर्ष बाद फूलता है और इसके बाद मर जाता है।

उड़नेवाला साँप

एशिया में पायाजानेवाला उड़नेवाला साँप कुण्डली बनाकर हवा में छलांग लेता है और एक बार में एक मीटर की दूरी तक उड़ता है।
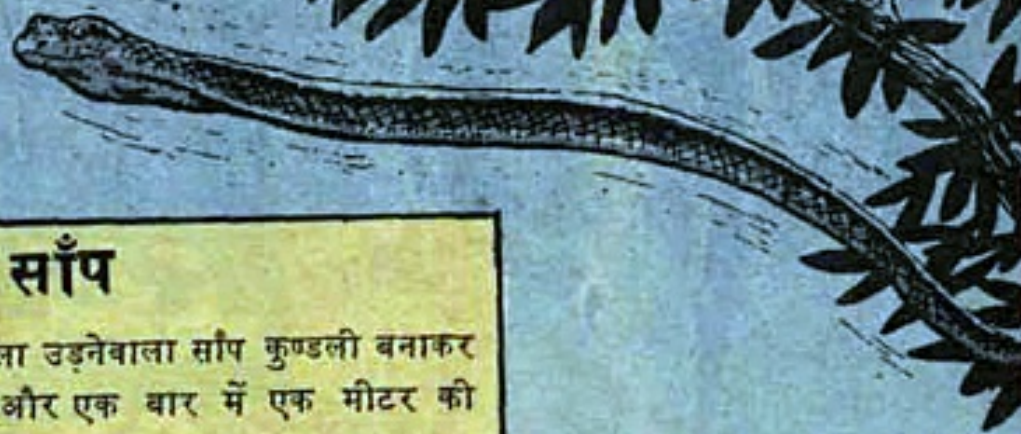
मुड़-मुड़ के देखे संसार
सुपर रिन की चमकार !

सुपर
रिन

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ दिसम्बर १९८६ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

S. B. Prasad

M. Natarajan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अक्तूबर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अगस्त के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो: प्यार से दिया जो तृण!

द्वितीय फोटो: उतार रहा स्वामी का ऋण!!

प्रेषक: कु. के. सर्राफ, द्वारा यल. यल. सर्राफ, एडवोकेट, सिविल लाइन्स, मीरजापुर (उ. प्र.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता:

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये:

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

चॉकलेटी मज़ा हर एक के लिए !
nutrine
Chocolate Eclairs
more milk
more butter
more chocolate
बाहर कैरेमल
बीच में चॉकलेट
एक साथ दो स्वाद
nutrine
भारत की सबसे ज़्यादा बिकने वाली स्वीट्स
न्यूट्रीन कन्फेक्शनरी कं. प्रा. लि., चित्तूर, आं.प्र.
CLARION/NC